भगवान् श्री महावीर के २५ वें शताब्दी समारोह के उपलक्ष में

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग ११)

लेखक की अन्य कृतियाँ

१-१०	जैन कहानियाँ	१.५०
११-२५	जैन कहानियाँ	२.५०
२६	जनपद विहार	३.००
२७	अंक-स्मृति के प्रकार	१.००
२८	ऐकाह्निक पंचशती	०.४०
२९	सत्यम् शिवम्	१.००
३०	जम्बू स्वामी री लूर	०.४०
३१	आत्म-गीत	०.५०

सम्पादित

१	श्री कालू यशो विलास	
२	श्री कालू उपदेश वाटिका	१२.५०
३	भग्न-मुक्ति	८.००
४	अग्नि-परीक्षा	६.५०
५	आषाढ़भूति	२.५०
६	श्रद्धेय के प्रति	२.२५
७	नैतिक संजीवन	२.००
८	आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन	२५.००
९	आचार्य श्री तुलसी : जीवन दर्शन	३.५०
१०	अहिंसा पर्यवेक्ष	३.००
११	अहिंसा विवेक	६.५०
१२	अणु से पूर्ण की ओर	०.७५
१३	अणुव्रत की ओर—१	२.००
१४	अणुव्रत की ओर—२,	२.००
१५	आचार्य श्री तुलसी	२.००
१६	अन्तर्ध्वनि	०.७५
१७	नया युग : नया दर्शन	१.५०
१८	विश्व-प्रहेलिका	१५.००

आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग-११)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

१९७१

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

SACHITRA JAIN KAHANIYAN

PART II

by

Muni Shri Mahendra Kumarji 'Pratham'

Rs. 2.50

First Edition, 1971

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

शाखाएँ

हौज खास, नई दिल्ली

चौड़ा रास्ता, जयपुर

विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़

अशोक मार्ग, लखनऊ

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

चित्राकार : श्री व्यास कपूर

मूल्य : दो रुपये पच्चास पैसे

प्रथम संस्करण : १९७१

मुद्रक

हरिहर प्रेस,

दिल्ली-६

भूमिका

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानियाँ (भाग १ से १०) सन् १९६९ में प्रकाशित हुईं। भाग ११ से २५ अब सन् १९७१ में प्रकाशित हो रहे हैं। समग्र जैन-कथा-साहित्य को शताधिक भागों में प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागों का प्रकाशन समग्र योजना के अंकन का एक मानदण्ड बन गया। आत्माराम एण्ड संस जैसे विश्रुत प्रकाशन संस्थान से एक साथ १० भागों के प्रकाशित होते ही जैन जगत् और साहित्य-जगत् में नवीन स्फुरणा-सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, बौद्ध कहानियाँ शृंखलाबद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र में कब ही आ चुकी हैं। जैन कहानियों का इस रूप में अवतरण यह प्रथम बार हो रहा है, अतः स्तुत्य है और एक दीर्घकालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा – बहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगों ने मुझे कहा—जैन कथाओं को भी आप अपनी शैली और अपनी भाषा दें। मैंने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी ? प्रस्तावक व्यक्तियों ने बड़े-बड़े ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सब देखकर मैंने कहा—ये विभिन्न भाषा और वभिन्न विषयों में आबद्ध ग्रन्थ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो

सकेंगे। इन ग्रन्थों में तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मैं क तक कथा-संग्रह और कला-चयन कर सकूंगा तथा कब तक फिर उस कथा-संग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूंगा। मुझे तो संगृहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दें। मेरी इस मांग का समाधान उनके पास नहीं था, अतः वह बात नहीं रह गई। जैन कहानियों के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आए अविलम्ब मैं पढ़ गया। जैन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन में गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हें मैं या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जैन-कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सर्वसाधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तकों को आप और अनेकों अन्य मूर्धन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ़ गए, यह क्यों ? उन्होंने बताया साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों का कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढ़नी पड़ती है। नवीन कथाओं का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उर्वर बनाता है। नए बीज़ देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सर्वसाधारण के लिए लिखी जैन कहानियों को अविलम्ब पढ़ गए। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जैन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वतः फलित होती ही है।

जैन कहानियां दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि सभी जैन समाजों में मान्य हुई। शास्त्र सब जैन समाजों के एक भले ही न हों, पुरातन कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लिए रुची-वर्धक प्रमाणित हुआ। बच्चों में, वृद्धों में युवकों में व महिलाओं में जैन कहानियां पढ़ने की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक-एक शब्द जोड़-जोड़कर पढ़ती थी, वे दशों भाग पढ़ने तक हिन्दी धारा प्रवाह पढ़ने लगी। धार्मिक प्रशिक्षण एवं

धार्मिक परीक्षाओं में इनका उपयोग हुआ। विद्यालयों के पुस्तकालयों में ये व्यापक स्तर पर पहुँची। जैन जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हें प्राप्त करते और अपूर्व उत्साह से इन्हें पढ़ते। अग्रिम भागों की स्थान-स्थान से माँग आने लगी।

सर्वसाधारण प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ एक लोगों ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानियाँ या बोध कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारकों ने सुझाया कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थीं। प्रत्येक कहानी का ग्रन्थ-संदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नहीं लगा। सार्वजनिक या सार्वदेशिक नाम होने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक बन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी बात, परम्परागत आधारों पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ साहित्य जगत् में पहले से ही प्रसारित हो चली हैं। इस स्थिति में एक परम्परा विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता में विलीन कर देना उस परम्परा के साथ न्यायोचित नहीं होता। ऐसा शक्य भी नहीं था। नामकरण के बदल देने से कथा-वस्तु तो बदलती नहीं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथा-वस्तु में अपनी संस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिबिम्बित होते हैं। वह आधार मिटा दिया जाए, तो कथा वस्तु ही निराधार व निरर्थक बन जाती है। अस्तु, इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक-माला का नाम 'जैन कहानियाँ' ही अधिक संगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रन्थ-संदर्भ का सुझाव शोध-विद्वानों की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक-माला मुख्यतः लोक-साहित्य के रूप में प्रका-

शित हो रही है। अधिक से अधिक लोग इसे पढ़ें व सात्त्विक प्रेरणा ग्रहण करें, यह इसका अभिप्रेत है। सर्वसाधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रेम होता है, न कि उसके मूल ग्रन्थ और ग्रन्थकार से। किसी कथा को पढ़ते ही शोध-विद्वान् की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है, वह कितना पुराना है। इस कथा-वस्तु पर अन्य किस वस्तु का प्रभाव है, अन्य परम्पराओं में यह कथा मिलती है, या नहीं आदि-आदि। शोध-विद्वान् की ये मौलिक जिज्ञासाएँ सर्वसाधारण के लिए भूलभुलैया है। अस्तु, पुस्तक-माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेषणात्मक टिप्पणें जोड़ना आवश्यक नहीं माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागों की कथाओं के मौलिक आधार अपने लेखकीय में बता दिए हैं। इससे शोध-विद्वानों को प्राथमिक दिग्दर्शन तो मिल ही जाएगा। लेखक की परिकल्पना है, इस पुस्तक-माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओं के वर्गीकृत रूप का गवेषणात्मक टिप्पणों के साथ स्वतन्त्र संस्करण पृथक् ग्रन्थ के रूप में तैयार कर दिया जाए।

कथा-वस्तु की सरसता बढ़ाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्येक कथा में घटना-सम्बद्ध एक-एक चित्र दिया है। चित्रकार ने जैन साधु की मुद्रा लेखक की वेषभूषा में ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर, स्थिति यह है कि जैन साधु की कोई भी एक वेषभूषा जैन समाज में सर्वसम्मत नहीं है। दिगम्बर मुनि अचेलक है। श्वेताम्बर मुनि-वस्त्र धारक हैं पर, उनमें भी दो प्रकार हैं, मुखपतिबद्ध और अमुखपतिबद्ध। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिबद्ध हैं तथा स्थानाकवासी और तेरापंथी मुखपतिबद्ध हैं स्थानकवासियों और तेरापंथियों में भी मुखपति के छोटे-बड़ेपन व आकार-प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियों पूर्व के जैन साधुओं

का श्वेताम्बर रूप था या दिगम्बर रूप, यह भी अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। इस स्थिति में गौतम, स्थूलिभद्र आदि प्राचीन व सर्वमान्य भिक्षुओं की वेषभूषा क्या चित्रित की जाए, यह एक जटिल प्रश्न बन जाता है। हाँ, महावीर व अन्य तीर्थंकरों के स्वरूप में सभी जैन समाज एकमत है। उनकी अचेलक अवस्था निर्विवाद है। दशों भाग ज्यों ही प्रकाशित होकर आए और चित्रों में जहाँ-जहाँ जैन मुनियों की उपस्थिति आई, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप मुखपतिबद्ध आया। मुखपति भी तेरापंथी आकार-प्रकार की। लेखक के लिए सब संकोच का विषय बना। उनके मनमें तो ऐसा कोई आग्रह था नहीं। स्थितिवश यह सब हुआ। प्रश्न यह है कि जैन साधु का कोई भिन्न स्वरूप भी चित्रकार देता, तो क्या देता? कोई सर्वसम्मत रूप है भी तो नहीं।

लेखक के प्रति अकारण ही कोई संकीर्णता की धारणा बने, यह भी वांछनीय नहीं था, अतः आगामी दश भागों के लिए यही निर्णय लिया गया कि जैन साधु की अनिवार्यता वाला घटना-प्रसंग चित्र-बध्द किया ही न जाए। इस निर्णय से चित्रकार की स्वतंत्रता में बाधा आएगी। यथार्थ व प्रभाव पूर्ण घटना को छोड़कर उसे साधारण घटना-प्रसंगों को चित्रबद्धता देनी होगी। इससे पुस्तक व कथा-वस्तु का आकर्षण भी न्यून होगा पर इसके सिवाय प्रस्तुत समस्या का कोई समाधान भी तो नहीं था। पूर्व प्रकाशित भागों के नए संस्करणों में भी यह संशोधन उपादेय हो सकेगा। चालू संस्करणों को तो स्थिति-प्रज्ञ पाठक निर्भ्रान्त भाव से पढ़ते रहेंगे, यह आशा है ही।

लेखक की समग्र जैन कथा-साहित्य को इसी शृंखला में लिख देने की परिकल्पना है। उन्होंने अपने लेखन का विषय ही कथा-साहित्य बना लिया है। पश्चिमी लेखकों ने इसी प्रकार एक-

एक विषय पढ़कर बड़े-बड़े साहित्यकार्य कर बताये हैं। भारतीय साहित्यकार शृंखलाबद्ध कार्य के पर्याप्त आदी नहीं बने हैं। अब वह क्रम उनमें आ रहा है, यह सन्तोष की बात है। मुनि महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम' अपने संकल्प को परिपूर्ण कर हिन्दी जगत् को बड़ी देन देंगे व जैन जगत् को अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

तेरापंथ साधु संघ लेखकों, कवियों एवं साहित्यकारों का एक उर्वर धाम है। अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के निर्देशन में अनेक धाराओं में साहित्य कार्य चल रहा है। इसीका एक उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की ये कथाकृतियाँ हैं।

-मुनि नगराज

प्राक्कथन

सम्राट् विक्रमादित्य के पास बत्तीस पुतलियों का एक अद्भुत व प्रभावक सिंहासन था, जिस पर बैठ कर वह न्याय तथा प्रशासन का संचालन किया करता था। उसके पास एक स्वर्ण-पुरुष भी था, जिसके बल पर उसने अपनी समस्त प्रजा को ऋण-मुक्त किया था। कहा जाता है, उसको महाराजा हरिश्चन्द्र का अखूट गुप्त निधान भी प्राप्त था। अग्नि वेताल उसका परम सेवक था। सहज ही जिज्ञासा होती है, इन सबका क्या कोई पूर्व इतिहास भी है या सम्राट् विक्रमादित्य से ही इनका सम्बन्ध जुड़ता है? यदि है तो वह क्या है? अम्बड़ की यह कथा इस तथ्य का रहस्योद्घाटन करती है। सम्राट विक्रमादित्य के सदृश ही शौर्य, साहस, दानवीरता तथा चातुरी में अम्बड़ भी अग्रणी था। निर्धनता के क्षणों में भी निराशा से उपराम लेकर उसने गोरख योगिनी के मार्ग-दर्शन में अनहोने कार्य कर दिखलाये तथा प्रचुर ऐश्वर्य व वृहत्तम राज्य का आधिपत्य हस्तगत किया। योगिनी ने एक-एक कर अम्बड़ को सात आदेश प्रदान किये और जब वह पूर्ण करने के लिए निकला, बत्तीस पुतलियों का सिंहासन, स्वर्ण-पुरुष, महाराजा हरिश्चन्द्र का निधान तथा अग्निवेताल आदि की उसको सहज उपलब्धि हुई। प्रस्तुत कथा में बहुत अधिक घुमाव तथा आश्चर्य है। कुछ-कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं, जिनमें तर्क हतप्रभ होता

है, पर, कथावस्तु की रोचकता पाठक को उसका अवकाश नहीं देती।

अम्बड़ भगवान् महावीर का परम श्रावक था। श्राविका सुलसा के सम्यक्त्व की उसने ही परीक्षा की थी और उसे भगवान् श्री महावीर का सन्देश दिया था। आगामी उत्सर्पिणी में देवतीर्थ कृत नामक बाईसवाँ तीर्थंकर होगा। जैन परम्परा में अम्बड़ का नाम अति विश्रुत है। पर, यह परिव्राजक अम्बड़ से भिन्न है।

जैन-कथाओं के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दी से चल रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया और क्रमशः अनेकानेक कथाएं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय भाषाओं से रूपान्तरित होकर एक शृंखला में सम्बद्ध होने लगीं। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर, लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जायेगा, यह कल्पना नहीं थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सुन्दर स्रोत फूट पड़ा। इस बीच प्राचीन आचार्यों के अनेकानेक कथ-संग्रह के ग्रन्थ भी देखे और उनसे कथाओं का चयन आरम्भ किया। संक्षिप्त व विस्तृत दोनों शैलियों से लिखे ग्रन्थों के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जानकारी में पर्याप्त योग मिला, पर, उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता में कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है, बहुत सारे स्थलों पर मत-भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर, सर्वसम्मतता के अभाव में एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहाँ तक स्वयं की मान्यताओं का प्रश्न था, बहुत सारे स्थलों पर उनका आग्रह न रखकर कथा-वस्तु को ज्यों-का-त्यों रखा गया है, ताकि तात्कालीन परिस्थितियों के बारे में पाठक अपना

निर्णय स्वतर सके :क। मैंने अपना निर्णय पाठकों पर थोपने का यत्न नहीं किया है। बहुत सारे स्थलों पर कथा-वस्तु में तनिक-सा परिवर्तन कर देने पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी, किन्तु, प्राचीन कथाओं की मौलिकता को बनाये रखने के लिए ऐसा भी नहीं किया गया है।

जैन कथा-साहित्य जितना विस्तीर्ण है, उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा में नहीं आया था, अतः वह अपरिचित ही रहा। मुझे यह अनुमान नहीं था कि पच्चीस भाग लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है, जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने में अनेक वर्षों की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि में कथाओं का विपुल भण्डार है। रास साहित्य ने उसमें विशेषतः और अभिवृद्धि की है। ज्यों-ज्यों गहराई में पहुँचा जायेगा, त्यों-त्यों विशिष्ट प्राप्ति भी होती जायेगी तथा और गहराई में घुमने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जायेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि जैन कहानियों का समाज के सभी वर्गों में विशेष समादर हुआ। कहना चाहिए, उसी कारण इस दिशा में निरन्तर लिखते रहने का उत्साह जगा। आरम्भ में योजना छोटी थी, पर, अब वह स्वतः काफी विस्तीर्ण हो चुकी है। पहली बार में दश भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए थे और अब दूसरी बार अगले पन्द्रह भाग प्रस्तुत हो रहे हैं। इसी क्रम से बढ़ते हुए शीघ्र ही सौ भागों की अपनी मंजिल तक पहुँचाना है। भगवान श्री महावीर के २५ वें शताब्दी समारोह तक यदि यह कार्य सम्पन्न हो सका, तो विशेष आल्हाद का निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवृत्त किया और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज जी डी० लिट्० के मार्ग-दर्शन ने उसमें गतिशील किया।

जीवन की ये दोनों ही अमूल्य थाती हैं। मुनि विनयकुमारजी 'आलोक' तथा मुनि अभयकुमारजी का सतत साहचर्य-सहयोग लेखन में निमित्त रहा है।

१५ नवम्बर,७० —मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'
दिल्ली

अनुक्रम

अम्बड़

श्रीवास नगर में विक्रमसिंह राजा राज्य करता था। एक दिन राजा सभासदों में घिरा राज-सभा में बैठा था। सहसा एक अपरिचित व्यक्ति वहाँ आया। राजा ने उसके बारे में जिज्ञासा की और आने का प्रयोजन पूछा। आगन्तुक ने अपना परिचय देने से पूर्व एक वाक्य कहा—"गोरखयोगिनी की ध्यान-कुण्डलिका के समीप एक निधान है।" निधान का नाम सुनते ही राजा के कान खड़े हो गये। उसने तत्काल प्रश्न किया—"उस निधान के बारे में तुझे क्या जानकारी है और वह कहाँ से प्राप्त हुई ?"

आगन्तुक सज्जन ने अपना परिचय देते हुए सारी घटना पर प्रकाश डाला। उसने कहा—"मेरा नाम कुरुबक है। मैं स्वनाम धन्य महाराजा अम्बड़ का पुत्र हूँ। आप सभी मेरे पिता के पौरुष, साहस और उदारता से परिचित ही होंगे। उनका राज्य कितना विस्तृत था, यह भी सुविश्रुत है। किन्तु, पूर्व के इतिहास से

सम्भवतः आप लोग अपरिचित हैं। मेरे पिताजी का पूर्व जीवन बहुत घटनात्मक है। वे एक निर्धन व साधारण व्यक्ति थे। उन्होंने धनोपार्जन के अथक प्रयत्न किये थे, किन्तु, वे उनमें सफल नहीं हो पाये।"

चारों ओर से एक ही साथ एक प्रश्न आया—"तो फिर वे एक महान् राजा और अद्भुत ऐश्वर्य-सम्पन्न कैसे बने ?"

कुरुबक ने कहा—"मैं यही बताने के लिये आपकी इस राज-सभा में उपस्थित हुआ हूँ। आप सुनें।" सभी व्यक्ति एकाग्र होकर बैठ गये। कुरुबक ने कहना आरम्भ किया—"मेरे पिता जन्म से ही निर्धन थे। उन्होंने धनोपार्जन के लिये मंत्र, तंत्र, औषधि आदि के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु, वे सफल न हो सके। एक बार वे घूमते हुए धनगिरि पर पहुँच गये। वहाँ उनका गोरखयोगिनी मे साक्षात्कार हुआ। उन्हें प्रणाम कर वे उनके समीप ही बैठ गये। गोरखयोगिनी ने उनसे उनका परिचय और आने का कारण पूछा। पिताजी ने एक ही वाक्य कहा—'आप ऐसा वरदान प्रदान करें, जिससे मेरा मनचाहा हो सके।' योगिनी का हृदय वात्सल्य से ओत-प्रोत था। उसने कहा—'तुम्हारी क्या कामना है ?' पिताजी ने अत्यन्त विनम्रता से



कुरुबक राजा विक्रमसिंह के दरबार में

कहा—'मुझे लक्ष्मी चाहिये।' योगिनी ने कहा—'लक्ष्मी की प्राप्ति साहस, सूझबूझ व पराक्रम के बिना नहीं होती।' पिताजी ने दृढ़ता के साथ निवेदन किया—'माताजी ! आप जो भी निर्देश करेंगी, मैं करने को प्रस्तुत हूँ। आपके आशीर्वाद से मैं किसी भी क्षेत्र में अपूर्णता का परिचय नहीं दूंगा।'

गोरखयोगिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने कहा—'यदि तू मेरे सात आदेशों को पूर्ण कर सके तो तुझे अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हो सकती है।' पिताजी ने दृढ़तापूर्वक सब स्वीकार किया।

❀ ❀ ❀

शतशर्करा वृक्ष का फल

बातों के माध्यम से गोरखयोगिनी ने पिताजी की गहराई को आँक लिया था। वह पूर्ण विश्वस्त हो गई। उसने पहला आदेश देते हुए कहा—'यहाँ से पूर्व में गुणवदना नामक एक वाटिका है। उस वाटिका में शत-शर्करा नामक एक वृक्ष है। उसका फल मेरे सामने प्रस्तुत कर।'

अम्बड़ तत्काल वहाँ से चला। यद्यपि वह वाटिका, वृक्ष और उसके फल से सर्वथा अनभिज्ञ था, किन्तु, मन में विशेष उत्साह था; अतः उसे कुछ भी असम्भव प्रतीत नहीं हो रहा था। वह रात भर चलता रहा। प्रातःकाल कुंकुम मण्डल के समीपवर्ती सरोवर पर पहुँचा। वहाँ उसने कुछ विश्राम किया। चारों ओर उसने नजर डाली। एक अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। पुरुष सिर पर घड़े रखकर पानी ला रहे हैं और महि-लाएँ घोड़ों पर सवार होकर इधर-उधर घूम रही हैं। अम्बड़ के लिये यह महान् आश्चर्य था। उसके मन में

नाना जिज्ञासाएँ उभर रही थीं। सहसा उसे एक पुरुष मिला। उससे उसने अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहा। पुरुष ने धीमे स्वर से कहा—'मौन रखो। यदि अपना यह वार्तालाप किसी स्त्री के कानों तक पहुँच जायेगा तो लेने के देने पड़ जायेंगे।' अम्बड़ ने कहा—'स्त्रियों से भय कैसा?' एक वृद्धा के कानों में ये शब्द पड़े। वह उसका ज्यों ही उत्तर दे, उसी समय एक राजसवारी उधर से आ निकली। एक स्त्री हाथी पर कसे एक स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान थी। उसका तेजस्वी चेहरा विशेष चमक रहा था। वह अपनी भृकुटि से पुरुष जाति का उपहास करती हुई इधर-उधर देख रही थी। उसके मस्तक पर छत्र था। दोनों ओर चमर बींजे जा रहे थे। उसके हाथ में एक स्वर्ण-दण्ड था, जो विशेष चमक रहा था। हाथी के आगे-पीछे स्त्रियों की एक अनुशासित बड़ी सेना चल रही थी। अम्बड़ तो यह देखते ही अवाक् रह गया। वृद्धा ने अम्बड़ के भावों को पढ़ा। ज्यों ही सवारी आगे निकल गयी, उसने कहा—'क्या अम्बड़ क्षत्रिय तू ही है? तू आज यहाँ आयेगा, यह मैं कभी से जानती थी। तुझे यदि अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाना है तो मेरे घर चल। मैं तुझे सब कुछ बतलाऊँगी।'

अम्बड़ ने अपना साहस बटोरा और वृद्धा के साथ उसके घर की ओर चल पड़ा। वृद्धा एक भव्य महल पर आकर रुकी। महल में अपार वैभव था। अम्बड़ धीरे-धीरे चलकर महल के आँगन में आया। धवल गृह के मण्डप में एक अत्यन्त सुरूपा षोडशी क्रीड़ा में लीन थी। उसके लावण्य के समक्ष संसार का लावण्य भी हतप्रभ था। वह अकेली बैठी सूर्य, चन्द्र, मंगल और राहु; चार गेंदों से खेल रही थी। वह चारों गेंदों को आकाश में उछालती हुई अपना मनोरंजन कर रही थी। उसकी कोई गेंद गिरने नहीं पाती थी। अम्बड़ के मन में जिज्ञासाओं का अम्बार लग गया। वह पूछने को ज्यों ही उतावला हुआ, त्यों ही वृद्धा ने कहा—"अम्बड़ ! तू गोरखयोगिनी के आदेश से शत-शर्करा वृक्ष का फल लेने के लिए आया है न ? जब तक तू उस फल को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक तू यहाँ आनन्दपूर्वक रह और मेरी पुत्री चन्द्रावती के साथ क्रीड़ा कर।"

असमंजस में तैरता-डूबता अम्बड़ कुछ सोच ही रहा था कि चन्द्रावती ने कहा—"तुम चिन्ता-मग्न क्यों हो रहे हो ? मैं तो तुम्हारे जैसा साथी खोज रही थी। आज हम दोनों आनन्द से खेलेंगे। अपनी क्रीड़ा

का नियम एक ही है कि गेंद को उछालते हुए व पकड़ते हुए जिसके हाथ से गेंद भूमि पर गिर जाए, वह हारा। हारने वाले को जीतने वाले की चरण-सेवा करनी होगी।" अम्बड़ ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। खेल आरम्भ हुआ। चन्द्रावती चारों गेंदों को आकाश में उछालने लगी। जब वह सूर्य गेंद को आकाश में फेंकती, दिन के सदृश प्रकाश चारों ओर फैल जाता। जब वह चन्द्र गेंद को आकाश में फेंकती पूर्णिमा के प्रकाश से सारा भू-मण्डल आलोकित हो जाता। जब वह मंगल और राहु गेंद को आकाश में उछालती, दोनों संध्या के प्रकाश में जैसे कि सारा विश्व स्नान कर रहा है, ऐसा आभास होने लगता। चन्द्रावती के हाथ सधे हुए थे। गेंद भूमि पर नहीं गिरी। कुछ समय बाद अम्बड़ ने कहा--'मुझे भी अवसर दो।' चन्द्रावती ने चारों गेंद उसके हाथ में थमा दीं। सूर्य कन्दुक को हाथ में लेकर ज्यों ही अम्बड़ ने उसे देखा, सूर्य-किरणों से वह व्याकुल हो उठा। वह गेंद को उछाल न सका। मूर्च्छित होकर सूर्य-बिम्ब में गिर पड़ा। चन्द्रावती ने सूर्य कन्दुक को आकाश में उछाल दिया। उस गेंद के साथ अम्बड़ भी आकाश में स्थिर हो गया। चन्द्रावती अपने अन्य कार्य में लग गई।

नागड़ सारथि सूर्य-मण्डल के समीप आया। मूर्च्छित अम्बड़ को देखकर उसका दिल करुणा से भर आया। अमृत के छींटे डालकर सचेत करने के अभिप्राय से नागड़ चन्द्र-मण्डल की ओर दौड़ा। किन्तु, उसे चन्द्र-मण्डल दिखाई ही नहीं दिया। उसने रोहिणी से पूछा। रोहिणी फूट-फूटकर रोने लगी। नागड़ से सहायता की याचना करते हुए उसने कहा—"मेरे पति चन्द्रदेव का चन्द्रावती ने अपहरण कर लिया है। वे उसकी कारा में बन्द हैं। मैं उनके विरह में कलप रही हूँ। मेरे इस दुःख का निवारण करो।" नागड़ ने रोहिणी को आश्वस्त किया और चन्द्रावती के घर की ओर चल पड़ा।

समय पर जिसे अवमान मिल जाता है, वह दूसरे पर आघात कर ही बैठता है। चन्द्रावती ने नागड़ को अपनी ओर आते देखा तो नागपाश बाण छोड़ा। नागड़ तत्काल चारों ओर से बंधकर गिर पड़ा। चन्द्रावती अपनी माता भद्रावती के साथ आमोद-प्रमोद करने लगी। नागड़ की बहिन सर्पदष्टश्रृंखला ने जब यह उदन्त सुना तो भाई के सहयोग में वह दौड़ी आई। उसने तत्काल एक अन्य बाण चलाया और नागपाश को तोड़ डाला। क्रुद्ध नागड़ चन्द्रावती की ओर झपटा।

चन्द्रावती ने सूर्य को तत्काल स्तम्भित कर दिया। सूर्य ने अपने ज्ञान-बल से सारा वृत्तान्त जाना। उसने अपने पुत्र नागड़ से कहा—"चन्द्रावती के साथ विरोध न रख। यह शक्तिरूपा योगिनी है। मुझे भी यह समय-समय पर स्तम्भित कर देती है। मैं भी इसकी शक्ति का कायल हूँ; अतः तू विरोध भावना समाप्त कर दे।"

सूर्य के निर्देश से नागड़ वहाँ से हट गया। उसने माया कुण्डलिनी शक्ति की आराधना की। उस शक्ति के प्रभाव से उसने भद्रावती को मार डाला। चन्द्रावती का अभिमान खण्डित हो गया। उसने नागड़ से क्षमा-याचना की। नागड़ ने चन्द्रावती से सूर्य-मण्डल और चन्द्र-मण्डल को भी मुक्त करवाया। चन्द्र-मण्डल रोहिणी को समर्पित किया। रोहिणी फूली नहीं समाई। नागड़ ने कहा—"इस प्रसन्नता के उपलक्ष में मुझे अमृत दो। मुझे एक पुरुष का अभी उद्धार और करना है।" रोहिणी ने अमृत लाकर से दिया। नागड़ सूर्य-मण्डल में आया। अम्बड़ के शरीर पर अमृत के छींटे डाले। वह तत्काल सचेतन हो उठा। अम्बड़ ने सूर्य को साष्टांग अभिवादन किया। सूर्य इससे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अम्बड़ को वरदान दिया—"आज से तू अनंग-जेता होगा। किसी भी

नारी के काम-बाण तुझे विद्ध नहीं कर सकेंगे।"

अनालोचित व आकस्मिक वरदान-प्राप्ति से अम्बड़ का पुलकित होना सहज ही था। उसने सूर्य के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। सूर्य उससे विशेषतः प्रसन्न हुआ। उसने उसे आकाशगामिनी और इन्द्रजाल; दो विद्यायें भी प्रदान कीं। सूर्य की आज्ञा से नागड़ ने शतशर्करा वृक्ष का फल लाकर भी अम्बड़ को दिया, जिसकी खोज में वह आया था। शतशर्करा वृक्ष के फल का अमोघ प्रभाव होता है। उसे अपने पास रखने वाला सदैव सुखी ही रहता है।

नागड़ ने अम्बड़ को भूमि पर लाकर छोड़ दिया। अम्बड़ ने सूर्य द्वारा दी गई विद्याएँ साधीं। चन्द्रावती को चमत्कार दिखाने के अभिप्राय से उसने महादेव का रूप धारण किया। चन्द्रावती के घर आया। प्रत्यक्षतः महादेव को अपने गृहांगण में पाकर चन्द्रावती पुलकित हो उठी। उसने सम्मुख जाकर साष्टांग प्रणाम किया और आभार व्यक्त करते हुए कहा—"आज मेरा घर पवित्र हो गया है और आपकी इस महती कृपा से मेरा जन्म भी कृतार्थ हो गया है।" चन्द्रावती भाव-विभोर होकर अपने को कृतकृत्य मान रही थी। उसी समय महादेव ने करुण स्वर

में रोना आरम्भ कर दिया। चन्द्रावती उसका अर्थ नहीं समझ पाई। उसने कहा—"भगवन् ! संसार के पालक, पोषक व संरक्षक तो आप ही हैं। आपके लिए कौनसा दुःख आ पड़ा, जिससे आप कलप रहे हैं ?"

झरती हुई आँखों से महादेव ने कहा—"पूछ मत ! मैं अत्यन्त दुःखी हो गया हूँ। मेरी प्राण-वल्लभा पार्वती मृत्यु की ग्रास हो चुकी है। मैं इस दुःख को कैसे भूल सकता हूँ।"

चन्द्रावती ने महादेव को सान्त्वना देते हुए कहा—"प्रभो ! मेरे योग्य कोई आदेश करें। यदि मैं आपके इस दुःख को तनिक भी बटा सकूंगी, तो मैं अपना अहो-भाग्य समझूंगी।"

महादेव ने अपने को कुछ सम्भालते हुए कहा—"तू पार्वती का स्थान ग्रहण कर, मैं दुःख-मुक्त हो सकूंगा।"

चन्द्रावती ने तत्काल कहा—"प्रभो ! मैं तो अपवित्र मानुषी हूं। आपके योग्य कैसे हो सकती हूं ?"

महादेव ने दृढ़ता के साथ कहा—'नहीं, तू मेरे योग्य ही है। मैंने जो यह प्रस्ताव तेरे सम्मुख रखा है, वह चिन्तनपूर्वक ही रखा है। तू इसे स्वीकार



चन्द्रावती महादेव का स्वागत करती हुई

कर ले।"

चन्द्रावती ने कुछ लज्जावनत होकर स्वीकृति की भाषा में कहा—"मेरा अहोभाग्य है।"

महादेव ने अगला प्रस्ताव रखा—"मेरे साथ विवाह करते समय तुझे भद्र होना होगा, फटे-पुराने व मैले-कुचेले वस्त्र पहनने होंगे, मुंह पर कालिख पोतनी होगी और गर्दभारोहण कर मेरे साथ चलना होगा।" चन्द्रावती ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मध्याह्न का समय निश्चित हुआ। चन्द्रावती ने समय से पूर्व ही सारे कार्य सम्पन्न कर लिये। गर्दभ पर आरोहित होकर वह महादेव की प्रतीक्षा करने लगी। शिव रूप धारी अम्बड़ समय पर वहां आ गया। जनता का विशाल समूह शिव-चन्द्रावती का विवाह देखने के लिए वहां एकत्र हो गया। जन-जन के मुख पर एक ही चर्चा थी, चन्द्रावती का अहोभाग्य है कि शिव के साथ इसका विवाह सम्पन्न हो रहा है। यह अब कैलाश चली जायेगी। जन-वाणी को सुनकर चन्द्रावती भी मन-ही-मन आह्लादित हो रही थी। आह्लाद सहसा विषाद में बदल गया। गर्दभ भड़क उठा और उसने चन्द्रावती पर दो-चार दुलत्तियां चला दीं। दर्शक खिल-खिलाकर हंस पड़े। चन्द्रावती शरमा गई। उसने शिव

से कहा—"स्वामिन् ! जनता के समक्ष यह कैसा हास्य ?" उसका वाक्य पूरा हो भी नहीं पाया था कि नन्दी (वृषभ) ने भी उस पर दो-चार लातें लगा दीं। चन्द्रावती की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। दो-चार क्षण बाद जब वह आकाश की ओर देखती है तो महादेव भी गायब थे। उसके तो पैरों से धरती खिसक गई। उपस्थित जन-समूह ने चन्द्रावती पर व्यंग कसते हुए कहा—"क्यों, कैलाश से अभी लौट आई ? महादेव के पास क्षण-भर भी नहीं रुकी ?"

अम्बड़ ने शिव-रूप का संहरण किया और मनुष्य-रूप धारण किया। चन्द्रावती ने जब उसे देखा तो काटो तो खून नहीं। मृत्यु से भी अधिक वेदना का उसे अनुभव हुआ। अम्बड़ ने तत्काल कहा—"सूर्य-मण्डल को जीत कर मैं आ गया हूं; अतः पुनः क्रीड़ा आरम्भ करो।" चन्द्रावती का खून खौलने लगा। अपने रोष को दबाने का उसने प्रयत्न किया, पर, उसके मुंह से कुछ शब्द निकल ही पड़े। उसने कहा—"आपने अपने को क्यों छुपाया ? क्या सचमुच में ही गधे हो ?" अम्बड़ ने भी तत्काल आंख दिखाई और कहा—"यदि सम्भल कर नहीं बोलेगी तो न मालूम और भी क्या-क्या विपदायें झेलनी पड़ेंगी।" चन्द्रा-

वती मन मसोस कर रह गई। वह भय से कांपने लगी। पुनः कन्दुक-क्रीड़ा आरम्भ हुई। अम्बड़ ने चन्द्रावती को जीत लिया। वह दीन-वदना देखती ही रह गई। अम्बड़ ने कहा—"या तो मेरी चरण-सेवा करो या मेरे साथ विवाह करो।" चन्द्रावती ने कहा—"जो आदेश होगा, करने को प्रस्तुत हूं।" दोनों स्नेह-सूत्र में आबद्ध हो गये।

नगर की विपरीतता के बारे में अम्बड़ की जिज्ञासा अभी भी शान्त न हो पाई थी। चन्द्रावती से उसने पूछा तो उसने सविस्तार प्रकाश डालते हुए कहा—"यह नगर मैंने ही अपनी शक्ति से बसाया है। मेरी इच्छा के विपरीत यहां का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। मैं जैसा चाहती हूं, वैसे ही आचरण के लिए सबको विवश कर देती हूं। आपको जो कुछ भी विपरीत मालूम देता है, उसके लिए मैं ही उत्तर-दायिनी हूं।"

अम्बड़ ने पुनः पूछ लिया—"तेरे पास वह कौन-सी विचित्र शक्ति है, जिसके बल पर तू सबको चाहे जैसा नाच नचा रही है? उसका रहस्य भी बता।"

चन्द्रावती ने अपने रहस्य का उद्घाटन करते

हुए कहा—"स्वामिन् ! मेरे पास चार विद्याएं हैं। उनके नाम हैं : १. आकाशगामिनी, २. चिन्तितगामिनी ३. स्वरूप-परावर्तिनी और ४. आकर्षिणी। ये आपके चरणों में समर्पित हैं।"

पराक्रमी अम्बड़ और शक्तिशालिनी चन्द्रावती के सम्मिलन से दोनों के ही दिन आनन्दपूर्वक बीतने लगे। कुछ दिन वहां रह कर सुवर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य सामग्री लेकर व चन्द्रावती को भी साथ लेकर उसने नगर की ओर प्रस्थान किया और गोरखयोगिनी के पास आया। शतशर्करा वृक्ष का फल उसके चरणों में उपहृत किया। योगिनी ने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया। अम्बड़ अपने घर लौट आया।

❀ ❀ ❀

आन्धारिका कन्या

कुछ दिन बाद अम्बड़ पुनः गोरखयोगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। करबद्ध होकर उसने दूसरा आदेश देने के लिए प्रार्थना की। योगिनी ने कहा—"दक्षिण दिशा में विशाल समुद्र के बीच हरिछत्र नामक द्वीप है। वहां कमलकाञ्चन योगी रहता है। उसकी कन्या का नाम आन्धारिका है। उसे तू ले आ।"

अम्बड़ ने योगिनी का आदेश शिरोधार्य किया और तत्काल उस दिशा में गगन-मार्ग से प्रस्थान कर दिया। कुछ ही समय में वह द्वीप के उपान्त में पहुँच गया। फल-फूलों से शोभित एक उद्यान में उसने विश्राम लिया। वह सोचता रहा, कमलकाञ्चन योगी की कुटिया का मुझे कैसे पता चलेगा? कुछ क्षण वह वहां रुका और उद्यान में आगे बढ़ गया। सामने से आता हुआ एक व्यक्ति उसे मिला। अम्बड़ उससे कुछ पूछे, उससे पहले ही आगन्तुक सज्जन बोल उठा—"अम्बड़! तुम तो इस वन में बहुत दिनों बाद आये?"

एक अपरिचित व्यक्ति के मुंह से अपना नाम व अपनत्व-भरी बातें सुनकर अम्बड़ चकित हो गया। वह उससे बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर, सब कुछ गौण कर उसने एक ही प्रश्न पूछा—"मैंने सुना है, यहां कमलकाञ्चन योगी रहते हैं। उनका आश्रम कहां है? मैं उनसे मिलने के लिए आया हूं।"

आगन्तुक सज्जन ने कहा—"वह मैं ही हूं।"

दोनों का वार्तालाप चल ही रहा था, कुछ दूर से एक कन्या के रोने की आवाज आई। कमलकाञ्चन योगी अपनी कुटिया में गया। आन्धारिका रो रही थी। योगी ने वात्सल्य-भरे शब्दों में उससे रोने का कारण पूछा। आन्धारिका ने कहा—"पिताजी! जानते हुए भी मुझे क्यों पूछ रहे हैं? यह आगन्तुक बड़ा धूर्त है। इसका नाम अम्बड़ है और यह मेरा अपहरण करने के लिए आया है।" योगी ने सहज भाषा में उत्तर दिया—"मेरी विद्यमानता में कोई भी तेरा अपहरण नहीं कर सकता।" अम्बड़ को भी यह सारी बात सुनाई दे रही थी। अपने गुप्त रहस्य को प्रकट होते देखकर वह बहुत चमत्कृत हुआ। योगी कुटिया से बाहर आया। उसने अम्बड़ की ओर घूरकर देखा और पूछा—"क्या तुम गोरखयोगिनी के द्वारा यहां भेजे गये हो?" अम्बड़ ने

इसे स्वीकार किया।

योगी के दो पत्नियां थीं। उनके नाम थे : १. कागी और २. नागी। योगी ने अम्बड़ को अपने अनुचर के साथ अपने घर भेज दिया। दोनों ही पत्नियों ने अम्बड़ को गोरखयोगिनी के कुशल-प्रश्न पूछे। अपने हाथों से दोनों ने उसको मनोहर भोजन करवाया। अम्बड़ कुछ विश्राम कर रहा था कि सहसा कुर्कुट हो गया। कागी और नागी, दोनों ने मार्जार बनकर क्रूरतापूर्वक कुर्कुट को यातना देनी आरम्भ की। कुर्कुट (अम्बड़) अत्यन्त परेशान हो गया। योगी घर आया। कुर्कुट को सम्बोधित कर उसने कहा—"तूने मेरी आन्धारिका कन्या के अपहरण का प्रयत्न करना चाहा, उसका ही फल चख रहा है।" अम्बड़ विवश था।

दुःख में व्यतीत होने वाला थोड़ा-सा समय भी बहुत लम्बा हो जाता है। अम्बड़ ने कुछ दिन वहीं गुजारे। एक दिन योगी ने अपनी पत्नियों से कहा—"इसे अब वन में छोड़ आओ। उन्होंने वैसा ही किया। मार्जार की यातना से उसका छुटकारा हो गया। वन में वह निर्भय घूमने लगा। एक दिन पानी पीने के लिए वह निकटवर्ती वापिका में गया। जी भरकर पानी पिया और तृप्त होकर बाहर आया। उसका कुर्कुट का

रूप छूट गया और वह पुनः मनुष्य हो गया। मणि, मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय होता है।

अम्बड़ वन में घूम रहा था। एक बार उसे रात में किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। वह सोचने लगा, इस भयावने जंगल में स्त्री का रुदन एक आश्चर्य है। शब्द के अनुसार वह वहां पहुंचा। एक स्त्री रो रही थी। आत्मीयताभरे शब्दों में अम्बड़ ने रोने का कारण पूछा। उस स्त्री ने अपनी राम-कथा सुनानी आरम्भ की। उसने कहा—"रोलगपुर नगर में हंस राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम श्रीमती है। मैं उनकी ही पुत्री हूं। मेरा नाम राजहंसी है। मैं जब यौवन में आई, मेरे पिता ने राजकुमार हरिश्चन्द्र को मेरे पाणि-ग्रहण के लिए सादर आमंत्रण दिया। वह विवाह के दिन नियत समय पर पहुँच भी गया। पाणि-ग्रहण विधि ही केवल शेष थी। सभी पारिवारिक और राजपुरोहित आनन्दमग्न इधर-उधर घूम रहे थे। मैं अपने वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर आई। मैंने सूर्य द्वारा दी गई कंचुकी भी पहन रखी थी। सहसा एक दुष्ट पुरुष कंचुकी को लेने के अभिप्राय से वहाँ आ धमका। उसने मुझे आकाश में उठा लिया। कंचुकी छीनने के लिए उसने विशेष बल का

प्रयोग किया। हम दोनों की छीना-झपटी होती रही। किन्तु, मैंने कंचुकी को नहीं छोड़ा। उसने क्रुद्ध होकर मुझे इस जंगल में गिरा दिया और स्वयं यहीं-कहीं चला गया। अब जब भी मुझे उसकी स्मृति होती है, रोमांच हो उठता है और मैं सिहर उठती हूँ। न मालूम किस समय वह नराधम यहां आ धमके और मेरे लिए कांटे बिखेर दे। महाभाग ! मेरे रुदन का यही कारण है।"

बात की थाह में जाने का अम्बड़ ने विशेष उपक्रम किया। उसने पूछा—"सुभगे ! यह भी बताओ, तुम्हें यह सूर्य-कंचुकी कैसे प्राप्त हुई !"

राजहंसी ने सात्विक गौरव की अनुभूति करते हुए कहा—"बाल्य-जीवन को लांघकर जब मैं कुछ सयानी हुई, मेरे माता-पिता ने सरस्वती पण्डिता के समीप मेरे अध्ययन की व्यवस्था की। मेरे साथ सात अन्य कुलीन कन्याएं भी अध्ययन में निरत थीं। हम आठों में बड़ा स्नेह था। हमारा अध्ययन व्यवस्थित चलता था। एक बार रात में हम पाठशाला में ही सो रही थीं। मध्य रात्रि में पण्डिता सरस्वती ने भूमि पर एक मण्डल उत्कीर्ण किया। उसके आह्वान पर चौसठ योगिनियां वहां आईं और क्रीड़ा करने लगीं। जब वे सभी विशेष आमोद-प्रमोद में थीं, पण्डिता ने

उनसे सिद्धि की याचना की। योगिनियों ने उससे कहा—"पहले तुम हमें पिण्ड अर्पित करो, फिर सिद्धि कोई बड़ी बात नहीं है।" पण्डिता सरस्वती ने हमारी ओर संकेत करते हुए कहा—"ये आठ कन्याएं इसी उद्देश्य से यहाँ लाई गई हैं। आप मुझे विधि-विधान बताएं, जैसा निर्देश होगा, सारा कार्य उसी प्रकार सम्पन्न हो जायेगा।" सभी योगिनियों के मुँह में पानी भर आया। उन्होंने कहा—"कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का रविवार ही सब प्रकार से श्रेष्ठ दिन है। उस दिन मध्याह्न में हम तेरे यहाँ आयेंगी। तुम इन्हें नैवेद्य सहित तैयार रखना।" योगिनियां अन्तर्हित हो गई।

"सहसा हमारी आँखें खुल गई। गुप्त रूप से हमने वह वार्तालाप सुना। बलि का नाम सुनते ही हमारा कलेजा कांप उठा। सभी सखियों ने मिलकर उसके प्रतिकार के लिए चिन्तन किया। मैंने उनसे कहा—राजा के समक्ष यह सारा उदन्त प्रस्तुत किया जाये और हम सब को सूर्य की आराधना करनी चाहिए। हमारी सुरक्षा का इससे सुन्दर अन्य कोई भी उपाय नहीं है। सभी सहेलियों ने मेरे इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। प्रातः हम आठों ही राजा के पास पहुंचीं। सारी घटना उन्हें सुनाई। राजा का खून

खौलने लगा। उन्होंने अपने अनुचरों को सरस्वती पण्डिता का तत्काल वध करने का निर्देश दिया। मैंने पिताजी से निवेदन किया—"यह ब्राह्मणी बड़ी दुष्टा है। इसे जो भी दण्ड दिया जाये, थोड़ा ही है, किन्तु, इसे क्रुद्ध करने की अपेक्षा इससे अपना संरक्षण कर लिया जाये, यही अधिक उचित है।" पिताजी ने पूछा—"तो ऐसा अन्य क्या उपाय हो सकता है ?" मैंने अपनी योजना पर प्रकाश डालते हुए कहा—"हम सूर्य की आराधना करेंगी। सूर्य के अनुग्रह से निश्चित ही हमारी विजय होगी।"

"अभिभावकों व गुरुजनों का आशीर्वाद कार्य की असम्भवता को भी सम्भवता में परिवर्तित कर देता है। पिताजी के शुभाशीष से हम सूर्य की आराधना में प्रवृत्त हुईं। निश्चित समय पर हमें सफलता मिली। सूर्य देव ने प्रत्यक्ष होकर हमें दर्शन दिये। उन्होंने मुझे कंचुकी प्रदान की और सहेलियों को सात अद्भुत गुटिकाएं। सूर्य देव ने इन वस्तुओं के प्रयोग के बारे में प्रकाश डालते हुए कहा—"पुत्रियो, वह दुष्टा पण्डिता जब योगिनी द्वारा दी गई साड़ी पहने, तब राजकुमारी को यह कंचुकी पहननी चाहिए और शेष तुम सबको अपने मुंह में ये गुटिकाएं रख

लेनी चाहिए। सरस्वती पण्डिता की एक भी चाल नहीं चल सकेगी। वह तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगी। तुम्हारा कुशल-मंगल होगा और सरस्वती अपनी मौत मर जायेगी।"

"सूर्य देव अदृश्य हो गये। हमारी इस आराधना और वरदान की भनक किसी के कानों तक नहीं पड़ने पाई। हम अपने अध्ययन में लीन हो गईं। कुछ दिन बाद पण्डिता ने स्वतः हम से कहा—"पुत्रियो, मुझे अपने ज्ञान-बल से ऐसा ज्ञात हुआ है कि निकट भविष्य में ही तुम सब पर भारी विपत्ति आने वाली है। यदि तुम चाहो, तो मैं तुम्हारे उस संकट का निवारण कर सकती हूं।" हम सभी कन्याओं ने कृत्रिम भय व्यक्त करते हुए कहा—"माताजी! हमें आपके अतिरिक्त कष्ट से उबारने वाला और कौन हो सकता है? हमारे अनिष्ट का शीघ्र ही निवारण करो।" पण्डिता फूल कर कुप्पा हो गई। उसने कहा—"आज रविवार है। तुम सभी मध्याह्न में मेरे घर आना। अनिष्ट-निवारण के लिए मैं उस समय विशेष प्रयत्न करूंगी।"

"प्रत्येक व्यक्ति रहस्य में चलता है और वह किसी के समक्ष उसे खुलने भी नहीं देना चाहता। कुछ एक सौभाग्यशाली व्यक्तियों के हाथ यदि वह रहस्य लग

जाता है, तो वे अपना बचाव कर भी लेते हैं। पण्डिता अपनी योजनाओं का ताना-बाना बुन रही थी और हम आठों कन्याएं अपना। निर्दिष्ट समय पर हम आठों ही वहाँ पहुँची। पण्डिता ने आठ कुण्डल-वृत्त बनाये और हमें एक-एक में बिठा दिया। धूप-दीप, नैवेद्य, मंत्र आदि से पूजा की गई। पण्डिता मकान में गई। हमने अवसर का लाभ उठाया। मैंने चातुरी से कंचुकी पहन ली और मेरी सखियों ने मुंह में गुटिकाएं ले लीं। कुछ ही समय बीता कि पण्डिता भी साड़ी पहनकर हमारे सामने आ गई। हम सब मिलकर उस पर टूट पड़ीं। हमने उसकी साड़ी छीन ली। उसका जीवन-दीप उसी समय बुझ गया। जनता को जब इस घटना का पता लगा तो उन्होंने हमें बधाई देकर हमारे पौरुष को बढ़ाया।"

कंचुकी का पूरा वृत्तान्त सुनाकर राजहंसी पुनः रोने लगी। अम्बड़ ने उसे आश्वस्त किया और विश्वास दिलाया कि जब तक मैं हूं, तब तक कोई भी तेरी ओर टेढ़ी नजर नहीं कर सकेगा। मैं प्रतिक्षण तेरे सहयोग में हूं। अम्बड़ ने अपना असली रूप प्रकट किया। साक्षात् एक देवकुमार को अपनी आँखों के सामने देखकर राजहंसी आश्चर्यान्वित हुई। उसे यह

भरोसा हो गया कि यह पुरुष निश्चित ही असाधारण प्रतिभाशाली व बलशाली है। उसने मनसा ही उसका वरण कर लिया। प्रत्यक्षतः प्रस्ताव रखा तो अम्बड़ ने भी उसे नहीं ठुकराया। दोनों स्नेह-सूत्र में आबद्ध हो गये।

सुख में कभी-कभी अचानक आपत्ति के बादल भी मंडरा जाते हैं, जिनकी कोई कल्पना भी नहीं करता। दोनों सुखपूर्वक रह रहे थे। एक दिन किसी अनजाने वृक्ष का फल खा लेने से राजहंसी गर्दभी हो गई। गर्दभी की तरह रेंकती हुई वह अम्बड़ के पास आई। अम्बड़ ने अपनी पत्नी को जब इस प्रकार विरूप देखा तो उसका दिल पसीज गया। तत्काल वह उस वापी से पानी ले आया। गर्दभी को पिलाया तो पुनः वह अपने मूल रूप में आ गई। राजहंसी ने जल-महात्म्य के बारे में पूछा तो अम्बड़ ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजहंसी ने भी रूप-परावर्त्तनकारी वृक्ष के फल अम्बड़ को दिखाये। अम्बड़ ने कुछ फल अपने पास रख लिये। अम्बड़ ने उस शाटिका के बारे में पूछा तो राजहंसी ने कहा—"वह तो मेरे पास नहीं है। वह तो मेरे पिता के नगर रोलगपुर में है। वह नगर यहां से बहुत दूर है। वहां सुरक्षित पहुंच पाना

भी अत्यन्त कठिन है।"

बुद्धिमान् व बलशाली व्यक्ति के लिए कुछ भी कठिन नहीं होता, अम्बड़ ने कहा और उसका स्वाभिमान चमक उठा। आकाश-पाताल में कहीं पहुंचना मेरे लिए असम्भव नहीं है। अम्बड़ ने आकाशगामिनी विद्या का स्मरण किया और राजहंसी को साथ लेकर चल पड़ा। कुछ ही देर में अम्बड़ रोलगपुर के उद्यान में पहुंच गया। स्वयं वहीं ठहरा। राजहंसी राजमहलों में गई। अपहृत कन्या को बिना किसी पूर्व-सूचना के राजमहलों में आते देखकर राजा-रानी को अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने उससे अपहरण की सारी घटना पूछी। राजहंसी ने भी अपनी घटना सविस्तार बतलाई। साथ ही राजकुमारी ने यह भी बतलाया कि आपके दामाद तो उद्यान में बैठे आपकी अगवानी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राजा तत्काल उद्यान पहुंचा। अम्बड़ का विशेष सम्मान किया और उत्सवपूर्वक उसका नगर-प्रवेश कराया गया। राजहंसी का विवाह विधिवत् अम्बड़ के साथ किया गया। राजा ने अपना आधा राज्य भी अम्बड़ को दिया। राजहंसी की सातों कुलीन सखियों का पाणिग्रहण भी अम्बड़ के साथ हुआ। अपनी आठों पत्नियों के

साथ कुछ दिन अम्बड़ वहीं रहा ।

स्वाभिमानी व्यक्ति अपने अपमान का बदला लेने से नहीं चूकता । कुछ समय वह खामोश रह सकता है, किन्तु, उसे भूल नहीं सकता । कुर्कुट के रूप में अम्बड़ ने जो अपमान व यातना सही थी, उसे वह तब तक नहीं भूल सकता, जब तक कि कमलकाञ्चन योगी की दाढ़ी को धूल न चटा देता । उसने रोलगपुर से अपने घर की ओर प्रस्थान किया । आठों पत्नियों व अन्य व्यक्तियों को स्थल-मार्ग से विदा किया और स्वयं आकाश-मार्ग से उसी वन की ओर चला । वहां से वापी का पानी व रूप परावर्तन-कारी फल लिया । हरिच्छत्र द्वीप पर पहुंचा । कमल-काञ्चन योगी का वेष बनाकर योगी के घर आया । कागी और नागी के हाथ में उसने फल दिया और कहा—"इसे संस्कारित कर शीघ्र ही शाक बनाओ । आज मुझे अभी भोजन करना है ।" ज्यों ही वे दोनों शाक बनाने लगीं, अम्बड़ ने वह फल भी उसमें मिला दिया ।

छल करने वाला व्यक्ति बहुत सावधान होता है । प्रत्येक क्रिया को वह जागरूकता से सम्पन्न करता है । अम्बड़ ने कागी योगिनी का रूप बनाया । योगी



कमल कांचन योगी के वेष में अम्बड़ कागी-नागी को फल दे रहा है

के पास आया। बड़े स्नेह से उसने कहा—"भोजन तैयार है, शीघ्रता करें। शाक व भोजन बहुत ही स्वादिष्ट बना है। विलम्ब होने से सारा मजा ही किरकिरा हो जायेगा।" योगी भोजन के लिए अधीर हो उठा। शीघ्र ही वह घर आया। पीछे से आन्धारिका अकेली थी। अम्बड़ चुपके-से आया और उसे उठाकर चलता बना। आन्धारिका रोने लगी। अम्बड़ ने दो-चार तमाचे मार कर उसे शान्त कर दिया। निमेष-मात्र में ही वह अपनी सेना में पहुंच गया। आन्धारिका के संरक्षण का भार राजहंसी को सौंपकर वह उन्हीं पैरों लौट आया। अम्बड़ अपने मूल रूप में ही योगी के घर आया। वहां उसने बहुत कौतूहल देखा। योगी गर्दभ हो गया था और दोनों योगिनियां गर्दभी। तीनों ही परस्पर दुलत्तियां चला रहे थे और नार-स्वर मे रेंक रहे थे। उस कौतूहल को देखने के लिए आस-पास के अनेक लोग जमा हो गये थे। सभी तरह-तरह की बातें करते हुए उन पर व्यंग कस रहे थे। अम्बड़ ने सहसा कहा—"क्यों, कमलकाञ्चन और कागी-नागी! फिर कभी अम्बड़ को कुर्कुट बनाओगे?" उसने उनको पीटना आरम्भ किया। पीटते-पीटते बीच में कहा—"क्यों, कमलकाञ्चन, तेरी

आन्धारिका कहां गई ? मैंने ही उसे अपहृत किया है।"

वह बार-बार तीनों पर चढ़ता और उन्हें बुरी तरह पीटता। जनता योगी के कारनामों से परेशान हो चुकी थी। उसने कहा—इन्हें यह उचित ही पुरस्कार दिया गया है। जब विशेष यातना दी जा चुकी तो जनता की प्रार्थना से उसने उस वापी का पानी पिलाकर उन्हें पुनः मनुष्य बना दिया।

सफलता प्राप्त कर अम्बड़ अपने नगर की ओर चला। कुछ दिनों में वह अपने घर पहुंचा। गोरखयोगिनी के पास जाकर नमस्कार किया और आन्धारिका उन्हें समर्पित की। गोरखयोगिनी ने गौर से अम्बड़ की ओर देखा और कहा—"तूने यह तो बड़ा विषम कार्य किया। अन्य कोई इसे नहीं कर सकता। तू वास्तव में ही वीर है।"

अम्बड़ अपने घर चला आया। अपनी पत्नियों के साथ राज्य-सुख में लीन हो गया।

❀ ❀ ❀

रत्नमाला

अम्बड़ कुछ दिनों के बाद पुनः गोरखयोगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने प्रार्थना की—"माताजी ! कृपा कर तीसरा आदेश प्रदान करें !" योगिनी ने कहा—"सिंहल द्वीप में सोमचन्द्र राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम चन्द्रावती और पुत्री का नाम चन्द्रयशा है। राजा के भण्डार में एक रत्नमाला है। तू उसे ले आ।"

अम्बड़ ने सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ उसका पौरुष, सौभाग्य और प्रतिभा-बल ही था। कुछ ही दिनों में वह सिंहल द्वीप पहुँचा। फल-फूलों से लदे हुए एक उद्यान में उसने विश्राम लिया। राज-भवन में प्रवेश की वह नाना योजनाएं बना रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक नव यौवना युवती पर टिकी। युवती के मस्तक पर एक उद्यान लहलहा रहा था। अम्बड़ को इससे बहुत आश्चर्य हुआ। वह युवती उसके पास से गुजरी। अम्बड़ ने

सोचा, सम्भव है, चन्द्रयशा यही हो। उसने चन्द्रयशा के नाम से पुकारा और पूछा—"सुभगे! कहाँ जा रही हो?" युवती ने घूरकर अम्बड़ की ओर देखा और कहा—"ज्ञात होता है, तुम विदेशी हो। मैं चन्द्रयशा नहीं हूं। मैं तो उसकी सखी हूं। मेरा नाम राजलदेवी है। मेरे पिता यहां के प्रधान मंत्री हैं। उनका नाम है—वैरोचन।"

अदृष्ट पूर्व जब कुछ भी देखा जाता है तो जिज्ञासा का उभरना सहज ही है। अम्बड़ ने युवती से पूछा—"सुभगे! तेरे मस्तक पर यह उद्यान जैसा क्या दिखाई दे रहा है? मैं इसका रहस्य जानना चाहता हूं।"

राजलदेवी ने उत्तर देना आरम्भ किया—"एक बार मैं राजकुमारी के साथ क्रीड़ा करने के लिए वन में गई। वहां हमने एक वृद्धा को देखा। हम दोनों ही उससे डर गईं। वह वृद्धा हमारे समीप आई। हमने अपना साहस बटोरा। वृद्धा ने हमसे पूछा—'तुम दोनों कहां जा रही हो?' हमने कहा—'हम तो आपकी सेवा में ही आई हैं।' प्रसन्नमना उस वृद्धा ने कहा—'यदि तुम मेरे साथ चलो, तो मैं तुम्हें महादेव के दर्शन करा दूं।' हमने उसकी बात का प्रतिरोध

करते हुए कहा—'माता ! महादेव कहां है और वहां हम कैसे पहुंच सकती हैं । यह तो बतलाओ ?' वृद्धा ने कहा—'महादेव पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर रहते हैं। मैं उनकी प्रतिहारिका हूं। मैं अपनी अचिन्त्य शक्ति से तुम्हें यथेष्ट स्थान पर पहुंचा सकती हूं।' रोगी तो चाहता ही था और वैद्य ने उसे वही अनुपान बतला दिया। हमने कहा—'तो हमें कैलाश पर्वत ले चलो।' वृद्धा तत्काल ही हमें पर्वत पर ले आई। शिव-पार्वती के साक्षात् दर्शन कर हम दोनों कृतार्थ हो गईं। किन्तु, हमें लगा कि हम कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हैं। हमने वृद्धा से पूछा—'यह इन्द्रजाल है या सत्य ?' वृद्धा ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'तुम सन्देह मत करो।' हमने शिव को नमस्कार किया। शिव ने वृद्धा से हमारे बारे में पूछा। वृद्धा ने हमारा परिचय दिया और कहा—'ये आपके दर्शनों की उत्कण्ठा से आई हैं। आप इन्हें कृतार्थ करें।' शिव ने हमारे पर अनुग्रह किया। उन्होंने एक दिव्य रत्नमाला राजकुमारी के गले में डाल दी और मुझे कूर्मदण्ड दिया। दोनों ही वस्तुओं का प्रभाव बतलाते हुए उन्होंने कहा—'माला को धारण करने वाला यथेच्छ रूप बना सकता है और वह जहां भी जायेगा,

विजयी होगा। कूर्मदण्ड के प्रभाव से समस्त शत्रुओं का एवं रोगों का निवारण होगा।'

"हम उन वस्तुओं को पाकर भी फूली नहीं। हमने पुनः निवेदन किया—'आपने अनुग्रह कर हमें ये वस्तुएं प्रदान कीं, किन्तु, हम तो प्रतिदिन आपके दर्शन चाहती हैं; अतः कोई ऐसी वस्तु प्रदान करें, जिससे हमारा मनोरथ पूर्ण हो सके।' शिवजी हमारे इस निवेदन से विशेष प्रसन्न हुए। उन्होंने त्रिदण्ड नामक वृक्ष की ओर संकेत किया और कहा—'तुम इसे ले जाओ। यह तुम्हारी कामना पूर्ण करेगा।' हमने श्रद्धा से शिवजी का अभिवादन किया। वृद्धा हमें पुनः मृत्य-लोक में यहां छोड़ गई। अब हम प्रतिदिन उस वृक्ष पर बैठकर शिवजी के दर्शन करने जाती हैं और पुनः आकर वृक्ष को आंगन में आरोपित कर देती हैं।"

अम्बड़ की एक जिज्ञासा का तो समाधान हो भी नहीं पाया था कि बीच में जब यह सुना तो वह बहुत चकित हुआ। उसने अपनी जिज्ञासा पुनः प्रस्तुत की। राजलदेवी ने कहा—"कैलाश की ओर जाते हुए सूर्य हमें प्रतिदिन देखा करता था। एक बार हम कैलाश से लौट रही थीं। सूर्य ने सोचा, ये कौन हैं और कहां जाती हैं? मनुष्य का भक्षण कर कहीं मुझे निगलने को

तो नहीं आ रही हैं ? किन्तु, ज्यों ही हम उसके निकट पहुंचीं, उसके भ्रम का निवारण हो गया। मनुष्य-रूप में उसने हमें देखकर प्रतिदिन गमनागम के बारे में पूछा। हमने उसे सारा वृत्तान्त बताया। शिव के प्रति हमारी वास्तविक भक्ति को देखकर सूर्य हमारे ऊपर विशेष प्रसन्न हुआ। उसने हमें वर माँगने के लिए कहा। हमने सजगता से उत्तर दिया—'हम तो केवल शिव की भक्ति ही चाहती हैं। अन्य वर से हमें कोई प्रयोजन नहीं है।' सूर्य हमारे ऊपर विशेष प्रसन्न था। उसने राजकुमारी को अपने भण्डार से एक सुन्दर तिलकाभरण दिया और मुझे यह रसमय उद्यान प्रदान किया। तिलकाभरण का ऐसा प्रभाव है कि उससे अंधकार में भी उद्योत हो जाता है। हम प्रतिदिन शिव-पूजा करती हैं और आनन्द में समय व्यतीत करती हैं।"

उद्यमी बातों में उलझकर अपना लक्ष्य कभी नहीं भूलता। अम्बड़ का प्रयत्न रत्नमाला पाने के लिए था। वह राजलदेवी के साथ शहर में प्रविष्ट हुआ। अम्बड़ ने एक नट का रूप बनाया और राजमार्ग पर ही नाटक आरम्भ कर दिया। मृदंग पर थाप लगते ही उसकी मधुर ताल से आकर्षित होकर हजारों व्यक्ति वहाँ एकत्र हो गए। सभी दर्शक उसकी कला की मुक्त

कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। नाटक का आरम्भ उसने अकेले ही किया था, किन्तु, नाटक में ज्यों-ज्यों रस बरसता गया, साथियों की भी आवश्यकता होती गई। उसने इकतीस नटिनियों को भी अपनी बहुरूपिणी विद्या से बना लिया। सारा रंगमंच खिल उठा। नाटक में विशेष आकर्षण भर गया। अपार जन-समूह उमड़ पड़ा। राजकुमारी चन्द्रयशा भी नाटक देखने के लिए आई। उसने जब अपनी सखी राजलदेवी को भी नृत्य में सम्मिलित देखा, तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने उसे टोकते हुए कहा—"अरी! क्या तुझे पागलपन सवार हो गया है? कुलीन बालाओं के लिए नृत्य-गान में इस प्रकार सम्मिलित होना शोभा नहीं देता।"

राजलदेवी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया—"नाद विद्या तो पांचवां वेद है। सुखी व्यक्तियों का सुखवर्धक है और दुःखी व्यक्तियों के लिए भी सदा सुखदायक है। यह ऐसा कौनसा अकुलीन कार्य है? मेरा तो तुझे भी कहना है, तू भी हमारे साथ आ जा और जीवन का अपूर्व आनन्द लूट।"

चन्द्रयशा चुप हो गई। राजलदेवी के माता-पिता भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने जब राजलदेवी का यह उत्तर सुना तो वे खीज से भर गए। वे राजा के पास

आये। उन्होंने निवेदन किया—"स्वामिन्! निश्चित हो यह धूर्त है और उसने राजलदेवी को भ्रमित कर दिया है। क्या करना चाहिए?" राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। नाटक देखने के लिए वह भी वहाँ आया।

संगीत, कविता और नृत्य में तब और अधिक रस बरसने लगता है, जब दर्शक व श्रोता उन पर झूम उठते हैं। तीनों ही दर्शकों व श्रोताओं पर न्योछावर हो जाते हैं। अम्बड़ की जब चारों ओर से मुक्त प्रशंसा हो रही थी और राजा भी दर्शकों में उपस्थित था, तो उसने नाटक को और सरस कर दिया। उसने ब्रह्मा, विष्णु व महेश का रूप बनाया। दर्शक अनुमान न कर सके कि ये कृत्रिम हैं या वास्तविक। उसके हाव-भाव, नृत्य-गीत व स्वर-ताल आदि सभी मोहक थे। चारों ओर गहरी शान्ति थी। कुछ देर बाद अचानक नाटक समाप्त हुआ। सभी को लगा, जैसे स्वप्न देख रहे थे। राजा ने प्रसन्न होकर अम्बड़ को रत्न, स्वर्ण, आभूषण आदि देने चाहे, किन्तु, उसने कुछ भी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अम्बड़ की प्रशस्ति में इससे चार-चाँद लग गए। उस दिन जन-जन के मुख पर एक ही चर्चा थी।

राजलदेवी जब अपने माता-पिता से मिली तो उन्होंने उसे कड़ा उलाहना दिया। उन्होंने कहा—"एक कुलीन कन्या का इस प्रकार किसी धूर्त के साथ खेलना लज्जाजनक है। तू ने अपनी कुल-प्रतिष्ठा पर कालिख पोतने का प्रयत्न किया है।" राजलदेवी ने बात काटते हुए कहा—"मेरे लिए वह धूर्त नहीं है। मैंने तो उसको अपना जीवन भी अर्पित कर दिया है।" माता-पिता आग-बबूला होकर उस पर बरस पड़े। राजलदेवी मौन हो गई।

सायंकाल दोनों सखियाँ मिलीं। चन्द्रयशा ने राजलदेवी से प्रश्न किया—"जिसके साथ तू नाटक खेल रही थी, वह कौन है? चातुरी से तो ज्ञात होता है कि वह निश्चित ही कोई सधा हुआ कलाकार है। उसके बारे में यदि तुझे कुछ जानकारी हो तो मैं सुनना चाहती हूं।" राजलदेवी ने अम्बड़ का जीवन-वृत्त विस्तार से बतलाया और अपने आकर्षित होने की घटना से भी उसे अवगत किया। चन्द्रयशा भी अम्बड़ से आकृष्ट हो गई। उसने भी कहा—"मैं भी इनके साथ ही विवाह करना चाहती हूं। कितना सुन्दर हो, आज रात्रि में तू उन्हें मेरे महल में भेज सके।" उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। राजलदेवी घर लौट

आई ।

चतुर व्यक्ति किसी के समक्ष अपना गुप्त रहस्य नहीं खोलता। कार्य की सम्पन्नता पर ही वह किसी को अपना भेद देता है। राजलदेवी ने चन्द्रयशा के साथ हुए अपने वार्तालाप से अम्बड़ को सूचित किया और चन्द्रयशा के पास जाने के लिए उसने आग्रह भी किया। अम्बड़ ने उसे स्वीकार कर लिया। राजलदेवी ने चन्द्रयशा के महलों की पहचान उसे करा दी। ज्यों ही रात का दूसरा पहर कुछ बीता, अम्बड़ राजकुमारी के महल में पहुंच गया। राजकुमारी ने अम्बड़ का बहुत स्वागत किया। बहुत समय तक दोनों का स्नेहिल वार्तालाप होता रहा। जाते समय अम्बड़ ने राजकुमारी को पान का एक बीड़ा दिया। उसमें उस फल का चूर्ण भी था। राजकुमारी ने प्रेम का उपहार समझकर उसे अपने मुंह में दबा लिया। अम्बड़ अपने आवास की ओर चला आया तथा राजकुमारी पान खाकर लेट गई।

सुखद कल्पना भी कभी-कभी अभिशाप में बदल जाती है, मनुष्य को सहसा यह विश्वास नहीं होता। किन्तु, परिणाम देखकर वह कलप उठता है। राजकुमारी के महलों में प्रातःकाल दासियाँ आईं। उन्होंने



अम्बड़ चन्द्रयशा को पान का बीड़ा दे रहा है

गर्दभी के रूप में चक्कर लगाते हुए उसे देखा, तो सभी को आश्चर्य व दुःख हुआ। राजा को सारी वस्तुस्थिति निवेदित की गई। राजा को भी अपार दुःख हुआ। शहर के सैकड़ों संभ्रान्त नागरिक भी वहाँ एकत्र हो गए। बहुत सारे सिद्धहस्त वैद्यों को भी बुलाया गया। अनेक उपचार किए गए, किन्तु, सभी निष्फल प्रमाणित हुए। खिन्नमना राजा ने उद्घोषणा करवाई—"जो मेरी पुत्री को नीरोग करेगा, उसे एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं पारितोषिक के रूप में दी जायेगी।" अनेकानेक मंत्र-तंत्रवादी उस घोषणा से आकृष्ट होकर आए, नाना प्रतिकार किए, किन्तु, राजकुमारी तनिक भी स्वस्थ न हो पाई। राजा ने पुनः घोषणा करवाई—"जो मेरी पुत्री को स्वस्थ कर देगा, पारितोषिक के रूप में उसे आधा राज्य और वह कन्या दी जायेगी।"

अम्बड़ ने योगी का वेष बनाकर उस घोषणा का स्पर्श किया। तत्काल राजपुरुषों ने राजा को बधाई दी। राजा अम्बड़ को राजकुमारी के महल में ले गया। योगीराज अम्बड़ ने तीन दिन तक देवाराधन किया। चौथे दिन अम्बड़ ने जनता व राजा की उपस्थिति में राजकुमारी को पूर्ण रूप से स्वस्थ कर दिया। सभी व्यक्ति दाँतों तले अंगुली दबाने लगे। सभी एक

स्वर मे कह रहे थे—निश्चित ही यह योगी असाधारण पुरुष है। राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार अम्बड़ को आधा राज्य दिया और कन्या का विवाह भी उसके साथ किया। वैरोचन प्रधान मन्त्री ने अपनी कन्या राजलदेवी अम्बड़ को अर्पित की। अम्बड़ वहाँ कुछ दिन ठहरा। अपनी दोनों पत्नियों व राज्य-भार का अधिग्रहण कर अपने नगर की ओर चल पड़ा। अम्बड़ रत्नमाला भी नहीं भूल पाया था। उसने उसे भी ले लिया। रथनूपुर पहुंचकर गोरखयोगिनी के चरणों में रत्नमाला भेंट की और सारा वृत्तान्त सुनाया। योगिनी ने उसे आशीर्वाद प्रदान किया। अम्बड़ अपने घर लौट आया और सुखपूर्वक रहने लगा।

* * *

लक्ष्मी और बन्दरिया

गोरखयोगिनी एक दिन प्रसन्नमना थी। अम्बड़ उसके चरणों में उपस्थित हुआ। करबद्ध होकर उसने निवेदन किया—"माता! अनुग्रह करो और चौथा आदेश प्रदान करो। योगिनी ने कहा—"तुम नवलक्ष नगर जाओ। वहाँ एक बहुत बड़ा बोहित्थ (समुद्री व्यापारी) रहता है। उसके घर में लक्ष्मी है। उसके पास एक बन्दरिया भी है। तू उसकी लक्ष्मी और बन्दरिया को ले आ।"

अम्बड़ वहाँ से चल दिया। मार्ग में उसने सुगंध-वन देखा। वन अत्यन्त रमणीक था। बारहों मास ही वहाँ वसन्त रहता था। कुछ ही क्षणों में अम्बड़ का सारा पथ-श्रम दूर हो गया। वह चारों तरफ दृष्टि पसारकर वन की सुषमा को देख रहा था। बकुल वृक्ष के झुरमुट में से उसने एक अत्यन्त सुरूपा बाला को जाते हुए देखा। बाला ने अम्बड़ का हृदय चुरा लिया। वह उसके पीछे-पीछे हो लिया,

किन्तु, वह बाला बिजली की तरह समीपवर्ती एक सरोवर के बीच से होती हुई शीघ्रता से कहीं चली गई और अदृश्य हो गई। अम्बड़ पलकें बिछाता ही रह गया। उसने उसे चारों ओर खोजा, किन्तु, कहीं भी उसका पता न चल सका। विरहाकुल अम्बड़ की आँखें झरने लगीं। दुःख में ही उसके दिन बीतने लगे।

भाग्यशाली की कामनाएं कभी अधूरी नहीं रहा करतीं। समय पाकर वे पूर्ण होती ही हैं। अम्बड़ एक दिन उसी बकुल वृक्ष के नीचे बैठा था। एक बटुक ने आकर उसे प्रणाम किया। एक फल भेंट करते हुए उसने निवेदन किया—"महाभाग ! तुम मेरे साथ चलो। तुमको असगावती ने अपने आवास पर आमंत्रित किया है।" एक अपरिचित व्यक्ति के माध्यम से अपरिचित युवती का निमंत्रण अवश्य ही रहस्य-भरा हो सकता है। अम्बड़ ने उस निमंत्रण को स्वीकार करने से पूर्व आगंतुक बटुक से असगावती और फल के बारे में जिज्ञासा की।

बटुक ने कहना आरम्भ किया—"अग्निकुण्डपुर में देवादित्य राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम लीलावती था। उसके और भी बहुत सारी रानियाँ थीं। राजकुमारों की संख्या भी बहुत थी।

एक दिन क एरानी ने राजा को अपने महल में भोजन के लिए आमंत्रित किया। राजा ने उस दिन का भोजन उसी रानी के महल में किया। रानी के विचार कुत्सित थे। भोजनान्तर रानी ने राजा पर जादू-टोना कर दिया। राजा तोते के रूप में बदल गया। कुछ ही क्षणों में वह संवाद विद्युद्गति से सारे शहर में फैल गया। जनता में हाहाकार मच गया। एक लोकप्रिय राजा को इस प्रकार बिना किसी अपराध के तोता बना देना, घिनौना कार्य था। सभी ने रानी की तीव्र भर्त्सना की। अन्य रानियों व पुत्रों ने मिल कर उस रानी को तिरस्कारपूर्वक देश से निकाल दिया। नृप के दुःख से सारा ही शहर दुःखित हो गया। पटरानी लीलावती ने तोते की परिचर्या का दायित्व अपने पर ले लिया।

तोते की परिचर्या में कोई कमी नहीं थी, पर, उस शरीर में राजा को चैन कैसे मिल सकता था! एक दिन उसने लीलावती के समक्ष चिता में जलकर भस्म होने की इच्छा व्यक्त की। सारे ही पारिवारिकों व नागरिकों में उससे कोहराम मच गया। उसी समय आकाश-मार्ग से तपस्वी कुलचन्द्र जा रहे थे। उन्होंने उस स्थिति को देखा। जनता को आश्वस्त करते हुए

उन्होंने कहा—"सब धीरज रखो। मैं राजा को थोड़े ही दिनों में स्वस्थ कर दूंगा।" दुःख के समय अपनत्व का एक शब्द भी विशेष उपयोगी बन जाता है। जनता में हर्ष की लहर दौड़ गई। तपस्वी ने अपनी मंत्र-शक्ति का उपयोग किया। राजा सात दिन में पूर्ण स्वस्थ होकर पुनः मनुष्य बन गया। शहर में विशेष महोत्सव किया गया। तपस्वी कुलचन्द्र ने राजा को धर्मोपदेश दिया। राजा संसार से विरक्त तो था ही, तपस्वी के सहयोग से वह पूर्णतः विरक्त हो गया। पुत्र को राज्य-भार सौंप कर उसने तापसी दीक्षा ग्रहण कर ली। रानी ने भी राजा का अनुगमन किया। दोनों ही व्यक्ति जंगल में साधना करने लगे और तपस्या में निरत रहने लगे। कुछ ही दिनों में रानी का गर्भ उभर आया। राजा ने सरोष कहा—"तपो-व्रत में कालिमा पैदा करने वाला यह कार्य तूने कैसे किया? रानी का सिर एक बार लज्जा से झुक गया। उसने नम्रता से कहा—"यह तो गृहवास का ही परिणाम है। तपोनुष्ठान के बाद तो इस कार्य की सम्भावना भी कैसे की जा सकती है। धार्मिक कार्य में विघ्न न हो, इस दृष्टि से मैंने आपको पहले सूचित नहीं किया।" पूरे दिन बीतने पर रानी ने एक कन्या

को जन्म दिया। रानी की उसी समय मृत्यु हो गई। राजा ने ही वन-भैंसों का दूध पिलाकर उस कन्या का पालन किया। वह कन्या ही अमरावती है।

अवस्था के साथ-साथ शरीर व प्रतिभा का विकास भी सहज है। इससे बाह्य व आन्तरिक; दोनों ही सौन्दर्य निखर उठते हैं। अमरावती का लावण्य इन्द्राणी से भी प्रतिस्पर्धा करने लगा। एक दिन वह वन में निश्चिन्त बैठी थी। आकाश-मार्ग से धनद जा रहा था। अमरावती के लावण्य पर वह अतिशय मुग्ध हुआ। वह भूमि पर उतर आया। अमरावती से विवाह की प्रार्थना करते हुए उसने उसके समक्ष तीन रत्न रखे। तीनों ही रत्न चामत्कारिक हैं। एक रत्न के प्रभाव से जल का उपद्रव शान्त हो जाता है, दूसरे के प्रभाव से अग्नि का उपद्रव और तीसरे के प्रभाव से भूत-प्रेत आदि की व्याधि का उपशमन होता है। अमरावती ने धनद को अपने स्नेह के लिए बधाई दी और चातुरी से कहा—"आज से आप मेरे बन्धु हैं। भाई-बहिन के स्नेह के सम्मुख सभी स्नेह हल्के पड़ते हैं। आपने मुझे ये तीन रत्न तो दिये ही हैं, किन्तु, ऐसा भी कुछ दें, जिससे मेरा कोई भी पराभव न कर सके।" अमरावती के प्रतिवेदन से धनद के हृदय में भी बन्धुत्व भावना

जगी। उसने अपनी बहिन के लिए पानी से लहलहाता एक सरोवर बनाया। सरोवर के मध्य मूल्यवान रत्नों से परिपूर्ण एक आवास बनाया। तपस्वी राजा ने अमरावती के भावी वर के बारे में पूछा तो धनद ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करते हुए कहा—"महा कलाकार अम्बड़ इसका पति होगा।"

तपस्वी ने पुन: पूछा—"उसे हम कैसे जान सकेंगे?"

धनद ने कहा—"आज से सातवें दिन बकुल वृक्षों के झुरमुट से गुजरती हुई अमरावती उसे अपने-आप देख लेगी।"

सारा रहस्य जब खुल चुका तो अम्बड़ ने मन-ही-मन अपने भाग्य की प्रशंसा की। जिस कन्या के लिए वह अकुला रहा था, उस कन्या की ओर से ही स्वत: उसको निमंत्रण प्राप्त हो गया। आगन्तुक बटुक ने आग्रहपूर्वक अम्बड़ को अपने साथ लिया और दोनों अमरावती के आवास की ओर चले आए। अमरावती आसन से खड़ी हुई। उसने अम्बड़ का विशेष सम्मान किया। परस्पर अनेक बातें हुईं। दोनों ने ही एक-दूसरे का हृदय प्रत्यक्षत: जीता। अम्बड़ ने राजर्षि से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अमरावती ने बटुक को संकेत किया। वह उठकर ज्यों ही जाने लगा, अम्बड़ भी

उसके साथ हो गया। अमरावती ने उसे रोका, किन्तु, वह नहीं माना। अमरावती ने वे ानों रत्न भी उसे देने चाहे, किन्तु, उसने उन्हें नहीं । .या। वह ऐसे ही चल पड़ा। आगे-आगे बटुक चल रहा था और पीछे-पीछे अम्बड़। वे दोनों कुछ ही दूर जा पाये होंगे कि अम्बड़ को एक मछली निगल गई। मछली कुछ ही दूर चली होगी कि वह बगुले की चोंच में जा फँसी। बगुला उड़ रहा था कि एक गृध्र ने उसे अपना ग्रास बना लिया और वह आकाश में अदृश्य हो गया। बटुक ने पीछे घूमकर देखा तो अम्बड़ दिखाई नहीं दिया। बटुक ने सरोवर में उसकी बहुत खोज की, किन्तु, उसका कहीं भी पता न चल सका।

दिल पर पत्थर बाँधकर बटुक अमरावती के पास आया। उसने कन्या से सारी वस्तुस्थिति बतलाई। कन्या मूच्छित होकर गिर पड़ी। राजर्षि पिता ने शीतल उपचारों से उसे सचेत किया और सान्त्वना दी, किन्तु, अमरावती का शोक दूर न हो भका। उसकी आंखों में तो अम्बड़ हो तैर रहा था। कुछ समय बीता।

गृध्र पक्षी उड़ता हुआ एक वृक्ष पर जा बैठा। वह भार से आक्रांत हो रहा था। उसी मार्ग से जाते हुए एक व्याध ने उस गृध्र को देखा। उसने बाण छोड़ा।

पंख फड़फड़ाता हुआ गृध्र नीचे गिरा। बगुला उसके चंगुल से छूट गया। चोंच में समाया हुआ मत्स्य भी गिर पड़ा। शिकारी उसे देखकर विस्मित हुआ। उसने मत्स्य को चीरा तो उसके उदर से मनुष्य निकला। उसने उसे सावधानी से बाहर निकाला। पानी से साफ किया और शीतल उपचार से उसे सचेत किया। अम्बड़ ने अपना परिचय शिकारी को दिया। शिकारी उसे विशिष्ट पुरुष समझकर अपने घर ले आया। भोजन आदि से उसका सम्मान किया। वह शिकारी नवलक्ष पुर का था। अम्बड़ एक दिन वहीं ठहरा।

जिसका जीवन विचित्रताओं से भरा होता है, वह जीवन में क्या नहीं देखता; यह प्रश्न ही नहीं हो सकता। अम्बड़ मध्य रात्रि में उठा। नगर देखने की अपनी उत्कण्ठा को रोक न सका। शिकारी की पुत्री भी उसी समय उठी और वह भी घर से चल पड़ी। अम्बड़ उसके पीछे-पीछे हो लिया। व्याध-पुत्री ने मार्ग में क्षत्रिय-पुत्री नागिनी, वणिक्-पुत्री सोही, ब्राह्मण-पुत्री रामती को भी बुला लिया। चारों मिलकर आगे चलने लगीं। व्याध-पुत्री ने एक स्थान पर रुककर कहा—"आज हमें इस चौराहे से होकर बोहित्थ (समुद्र-व्यापारी) के घर जाना है। क्यों ठीक है न?" सभी

ने 'हाँ' कहकर अपनी सहमति व्यक्त की।

व्याध-पुत्री के सुझाव पर चारों ही अजा बन गईं। अम्बड़ ने भी अपना स्वरूप छोड़ दिया और अज बन कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। एक नये बकरे को अपने पीछे आते देखकर वे चारों ही भयभीत हुईं। आगे जाने का उन्होंने संकल्प छोड़ दिया और वे अपने-अपने घर लौट आईं। प्रातःकाल चारों मिलीं। चारों के मस्तिष्क में एक ही प्रश्न था, वह अज कौन था और वह हमारे पीछे कहाँ से हुआ ? जब तक इस रहस्य को नहीं जान लिया जाता, तब तक हम निरापद नहीं हैं। दूसरी रात में वे फिर उसी प्रकार अपने-अपने घर से आईं। अजा के रूप में चलने लगीं। अज-रूप में अम्बड़ भी उन्हें वहीं मिला। अम्बड़ ने उनको स्तम्भित कर दिया। एक कदम भी चल पाना उनके लिए कठिन हो गया। वे असमंजस में डूब गयीं। साहसपूर्वक उन्होंने अज से ही कहा—"देव ! आप कौन हैं और हमें आपने किसलिए स्तंभित किया है ? व्यर्थ ही हमारी विडम्बना क्यों करते हो ? हमें जो भी कहना चाहते हो, कहो। हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं ?"

अज ने कहा—"यदि तुम मेरा एक काम कर सको, तो मैं तुम्हें सहर्ष छोड़ दूँगा।" चारों ही ने

कहा—"आप निर्देश करें।" अम्बड़ ने कहा—"इसी नगर में बोहित्थ की एक रूपिणी नामक कन्या है। मैं उससे मिलना चाहता हूँ। तुम मुझे उसके घर पहुँचा दो।" उन चारों ने उस कार्य को स्वीकार किया। अम्बड़ ने उन्हें मुक्त कर दिया। अम्बड़ को साथ लेकर वे बोहित्थ के घर आईं।

रूपिणी का महल जल की खाई से वेष्टित था। चारों ओर ताम्र का प्राकार था और वह सात मंजिल में था। पाँच हजार सुभट उसके प्रतिहारिक थे। सैकड़ों ध्वजाएँ व पताकाएँ उस पर फहरा रही थीं। रत्नमय द्वीपों से महल उद्योतित हो रहा था। रूपिणी एक सुनहले कक्ष में लक्ष्मी के पास बैठी बन्दरिया के साथ क्रीड़ा कर रही थी। पाँचों ही वहाँ पहुँच गए। रूपिणी ने आँखों का संकेत कर चारों का स्वागत किया। साथ ही उसने सरोष प्रश्न भी किया—"यह अदृष्टपूर्व अज तुम कहाँ से ले आईं? यह कौन है? इसके बारे में विस्तृत प्रकाश डालो।"

एक सखी ने उत्तर दिया—"निश्चित ही यह अज नया है, किन्तु, यह हमारे द्वारा लाया गया है, यह मिथ्या आरोप हमारे पर क्यों मढ़ रही हो? यह तो तुम्हारे बारे में सब कुछ जानता था। तुम्हारे लिए ही

इसने मार्ग में हमारी विडम्बना की। इसके बारे में जो कुछ भी तुम जानना चाहती हो, इसी से ही क्यों नहीं पूछ लेती ?"

रूपिणी एक बार डर गई। फिर उसने कुछ साहस किया और अज से कहा—"तुम अपना असली रूप प्रकट करो। मैं जानने को विशेष उत्सुक हूँ।" अम्बड़ ने अज-रूप का त्याग कर दिया और दिव्य मनुष्य के रूप में प्रकट हुआ। देखते ही सब की आँखें चुँधिया गईं। रूपिणी का हृदय तो जैसे कि उसकी ओर ही खिंचा जा रहा था। उसने प्रश्न किया—"स्वामिन ! आप कौन हैं ?" अम्बड़ ने कहा—"मेरा नाम अम्बड़ है। गोरख योगिनी के प्रताप से मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। सारा संसार मेरी मुट्ठी में है। मैं जैसे नचाना चाहूँ, सबको नाचना होगा।" रूपिणी चमत्कृत हुई और उसने अपना समर्पण करते हुए कहा—"मैं आज से आपके अधीन हूँ। मेरा वही उपयोग होगा, जो आप चाहेंगे।"

अम्बड़ अपने आलोचित कार्य में पूर्ण सफल था। जो वह चाहता था, उसकी प्राप्ति का मार्ग निष्कंटक हो गया। अम्बड़ ने कहा—"मुझे यह लक्ष्मी और बन्दरिया दे ?"



रूपिणी चमत्कृत होकर अम्बड़ के सम्मुख समर्पण करते हुए

रूपिणी ने विनयावनत कहा—"जब मैं ही आपकी हो चुकी हूँ, तो मेरी सारी वस्तुएं भी आपकी ही हो चुकी हैं। किन्तु, मुझे यह बन्दरिया कैसे प्राप्त हुई और इसके साथ मेरे प्राण-तन्तु किस प्रकार जुड़े हुए हैं, यह भी मैं आपको निवेदन करना चाहती हूँ।" अम्बड़ जम कर बैठ गया और रूपिणी ने कहना आरम्भ किया—"एक बार मैंने इन्द्र की आराधना की। उसने प्रसन्न होकर मुझे यह बन्दरिया दी। उसने कहा—'जब तक यह तेरे पास रहेगी, तेरा सौभाग्य बढ़ेगा। कोई भी तेरा पराभव नहीं कर सकेगा। किन्तु, जिस दिन तेरे से इसका वियोग होगा, उस दिन तेरी मृत्यु अवश्यम्भाविनी है।' इसलिए हे सिद्ध पुरुष! इसका और मेरा साथ-साथ रहना अनिवार्य-सा हो गया है। यह बन्दरिया मुझे प्रतिदिन नये-नये रत्न प्रदान करती है, जिनका मूल्य दो लाख का होता है। पहले आप मेरे साथ विवाह करें और मुझे व बन्दरिया को अपने साथ लें।"

अम्बड़ शीघ्रता में था; अतः उसने कहा—"अपने माता-पिता से कहो, वे तैयारी में लगें।" रूपिणी ने बात को काटते हुए कहा—"ऐसे कार्य शीघ्रता में नहीं बन पाते। यदि मैं यह प्रस्ताव माता-पिता के समक्ष

प्रस्तुत करूँगी, तो वे इसे कैसे मानेंगे ? प्रपंच के बिना यह कार्य सफल नहीं होगा।" अम्बड़ ने कहा—"वह भी बतलाओ। मैं शीघ्र ही उसे कर सकूंगा।" रूपिणी ने कहा—"पहले अज-विद्या प्राप्त करें। नगर में जाकर राजा मलयचन्द्र की पुत्री वीरमती के साथ विवाह करें और उसके बाद मुझे अनुगृहीत करें।"

अज-विद्या प्राप्त कर अम्बड़ शहर में आया। राजा मलयचन्द्र घोड़े पर सवार होकर घूमने जा रहा था। अम्बड़ ने अपनी विद्या का स्मरण किया। राजा बकरा हो गया। नागरिकों ने जब राजा को बकरे के रूप में देखा, तो बहुत दुःखित हुए। राजपुरोहित और मंत्री ने अनेक उपचार किए, किन्तु, सफलता नहीं मिली। प्रधान मंत्री ने स्थिति को नियंत्रण में रखने के अभिप्राय से नगर-द्वार बंद करवा दिए।

अम्बड़ अवसर की ताक में ही था। उसने बहुरूपिणी विद्या के माध्यम से चतुरंगिनी सेना को विकुर्वणा की। अम्बड़ ने अपने सुभटों को प्रशिक्षित कर नगर-द्वार पर भेजा। द्वार बंद थे। सुभटों ने द्वारपालों से कहा—"प्रतोली को बंद क्यों कर रखा है ? रथनूपुर के राजा नगर-अवलोकन के लिए आए हैं।" प्रधान मंत्री से अनुमति लेकर द्वार खोल दिए गए। सैन्य-

सहित अम्बड़ ने नगर में प्रवेश किया। प्रधान मंत्री ने आगे आकर उनका स्वागत किया। नगर में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। अम्बड़ ने पूछा—"यह क्यों?" प्रधान मंत्री ने सारी घटना सुनाई। अम्बड़ ने कहा—"यह तो चुटकी मात्र में ही हो सकता है। राजा को तो मैं स्वस्थ कर सकता हूं, किन्तु, इसमें मुझे क्या मिलेगा?" प्रधान मंत्री ने कहा—"यदि राजा स्वस्थ हो जाता है, तो आधा राज्य और वीरमती कन्या आपको भेंट की जायेगी।" अम्बड़ ने विद्या का स्मरण किया और उसके प्रभाव से राजा संकट से मुक्त हो गया। प्रधान ने राजा मलयचन्द्र को सारी घटना बतलाई। राजा ने प्रसन्न होकर अपना आधा राज्य व वीरमती कन्या अम्बड़ को प्रदान की।

एक कार्य की सिद्धि से अन्य कार्य भी स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। वीरमती को लेकर जब अम्बड़ आया, तो रूपिणी आदि पाँचों सखियों ने भी उसके साथ विवाह किया। लक्ष्मी और बन्दरिया को प्राप्त किया। अम्बड़ धन-वैभव व पत्नियों को लेकर मृगंध्र वन में आया। अमरावती वहाँ कलप रही थी। अम्बड़ भी वहाँ रोने लगा। उद्यानपाल वटुक ने उसे रोते हुए देखा तो राजर्षि के साथ वहाँ आया। वटुक ने अम्बड़ को

पहचान लिया। अम्बड़ ने राजर्षि को नमस्कार किया और राजर्षि ने उसे आशीर्वाद दिया। दोनों ओर से आत्म-कहानी सुनाई गई। राजर्षि ने भी अमरावती की दुःख-कथा सुनाई। अम्बड़ और अमरावती का मिलन हुआ। दोनों स्नेह-सूत्र में आबद्ध हुए। अम्बड़ ने अमरावती को पटरानी बनाया। राजर्षि से अनुमति प्राप्त कर अम्बड़ ने परिवार के साथ अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। शहर में पहुँचकर अम्बड़ ने गोरख-योगिनी से भेंट की। लक्ष्मी व बन्दरिया उपहृत कर सारा वृत्तान्त निवेदित किया। योगिनी ने कहा—"अम्बड़ ! निश्चित ही तू वीर है।" अम्बड़ का मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

* * *

रविचन्द्र दीपक

अम्बड़ गोरख योगिनी के सात आदेशों को पूर्ण करने की धुन में था। कुछ दिन बाद वह पुनः योगिनी के पास आया। पाँचवें आदेश के लिए उसने प्रार्थना की, तो योगिनी ने कहा—"सौराष्ट्र में देवपत्तन नगर है। वहाँ के राजा का नाम देवचन्द्र है। वैरोचन उसका प्रधान मंत्री है। वैरोचन के घर एक विशेष दीपक है। उसी का नाम रविचन्द्र है। तू उसे ले आ।"

अम्बड़ धुन का पक्का था। योगिनी को नमस्कार कर वह देवपत्तन की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे एक ब्राह्मण मिला। अम्बड़ ने उससे पूछा—"तुम कहाँ जा रहे हो और कहाँ से आ रहे हो?" ब्राह्मण ने अपनी राम-कथा आरम्भ की। मैं देवपत्तन से आ रहा हूँ। उत्तर दिशा में महादुर्ग पर्वत है। उसके पास ही सिंहपुर नगरी है। वहाँ सागरचन्द्र राजा राज्य करता है। उसके पुत्र का नाम समरसिंह और पुत्री का नाम रोहिणी है। राजा सागरचन्द्र पर-काय-प्रवेशिनी विद्या

जानता है। वृद्ध अवस्था में राजा ने राजकुमार को राज्य-भार सौंप दिया और स्वयं निवृत्त होकर वन में जाने लगा। राजकुमारी रोहिणी ने भी पिता से कुछ देने का आग्रह किया। राजा ने उसे पर-काय-प्रवेशिनी विद्या प्रदान की और सावधान किया—"यह विद्या तू चाहे जिसे नहीं दे सकेगी। अपने भाई के अतिरिक्त अन्य मनुष्य का मुंह भी नहीं देख सकेगी। जिसे यह विद्या देगी, उसी के साथ विवाह करना तेरे लिए अनिवार्य होगा।" राजा वन में जाकर साधना में लीन हो गया और कुछ समय बाद वह देह-मुक्त भी हो गया।

ब्राह्मण ने आगे कहा—"समरसिंह यहां राज्य करता है। रोहिणी पिता की शय्या का रक्षण करती हुई कभी पर्वतों पर, कभी गुफाओं में और कभी महलों में समय व्यतीत कर रही है।"

अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए ब्राह्मण ने कहा—"मैं उस कन्या से पर-काय-प्रवेशिनी विद्या लेने के लिए जा रहा हूं।"

अम्बड़ की प्रतिभा बड़ी सूक्ष्म थी। किसी के दिल की बात वह बड़ी सहजता से निकलवा लेता था। उसने कहा—"विद्या की प्राप्ति तो विद्या से ही होती है। तुम उस राजकुमारी से विद्या लोगे, तो परिवर्तन

में उसे अपनी कौनसी विद्या दोगे ?"

ब्राह्मण ने कहा—"मेरे पास मोहिनी विद्या है। वह मैं उसे दूंगा और उसकी विद्या लूंगा।"

अम्बड़ ने पुनः प्रश्न किया—"कन्या को बिना देखे ही तुम विद्या कैसे ले सकोगे ?"

ब्राह्मण ने कहा—"इसके लिए तो कोई जाल बिछाना होगा।"

अम्बड़ ब्राह्मण से मोहिनी विद्या लेना चाहता था; अतः उसने कहा—"मेरे पास भी एक विद्या है। उसके आधार पर व्यक्ति अक्षय लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है।"

ब्राह्मण के मुँह में पानी भर आया। उसने कहा—"कितना सुन्दर हो, यदि हम अपनी विद्या का आदान-प्रदान कर लें।"

अम्बड़ का इच्छित फलित हो गया। दोनों ने विद्याओं का परिवर्तन कर लिया। दोनों ही कुछ दिन बाद सिंहपुर के निकट पहुँच गये। ब्राह्मण का साथ अम्बड़ को अपनी अभिसिद्धि में विघ्न रूप लगा। नगर-उद्यान में दोनों ने विश्राम किया। अम्बड़ ने ब्राह्मण से कहा—"हम दोनों का नगर में साथ-साथ प्रवेश उपयुक्त नहीं रहेगा। अलग-अलग जाना दोनों के लिए ही हितकर होगा।" ब्राह्मण ने इसे स्वीकार कर लिया।

शहर में पहुँचते ही अम्बड़ ने तपस्विनी का रूप बनाया। एक चौराहे पर अपना आसन जमाया। मोहिनी विद्या से सभी नागरिकों को आकृष्ट कर लिया। शहर में यह विश्रुत हो गया कि तपस्विनी सब प्रकार के निमित्त जानती है। किसी व्यक्ति की कार्य-सिद्धि कब और किस प्रकार होगी, निमेष मात्र में ही वह बतला देती है। यह बात उस ब्राह्मण के कानों तक भी पहुँची। वह भी तपस्विनी के पास आया। विनयावनत होकर उसने पूछा—"भगवति ! मैंने जो कार्य सोच रखा है, वह होगा या नहीं ?"

तपस्विनी ने ब्राह्मण के भाग्य का निर्णय देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा—"तू एक नई विद्या सीखने के लिए यहाँ आया है, किन्तु, वह विद्या तुझे प्राप्त न हो सकेगी। तेरा प्रयत्न बेकार ही जायेगा।"

ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु, उसने अपने प्रयत्न शिथिल नहीं किये। सफलता केवल प्रयत्न के ही अधीन नहीं होती। कभी-कभी वह देवाधीन भी हो जाती है। ब्राह्मण के सारे ही प्रयत्न जब विफल हो गये, तो वह अपने देश की ओर चला गया।

तपस्विनी की निमित्त-ज्ञान-सम्बन्धी चर्चा को राजकुमारी रोहिणी ने भी सुना। उसने दासियों को भेज-

कर अपने महलों में आने के लिए उसे निमंत्रण दिया। तपस्विनो ने उसे स्वीकार कर लिया। वह रोहिणी के पास आई। सुरूपा व सुलक्षणा तपस्विनी को देखकर रोहिणी बहुत प्रभावित हुई। उसे स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाकर राजकुमारी ने कुशल-प्रश्न पूछे। भोजन के लिये निमंत्रण दिया, तो उसने अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—"भोजन हमारे लिए आनन्दकारक नहीं है। हमारे जीवन का अभिप्रेत तो तपस्या ही है। तप के बिना धर्म का अनुष्ठान असम्भव होता है। हमारा तो यही ध्येय है कि हमारा पल-पल तपस्या में ही बीते।"

राजकुमारी रोहिणी तपस्विनी के धर्मोपदेश से बहुत प्रभावित हुई। उसने एक प्रश्न किया—"उभरते यौवन में ही आप विरक्त कैसे हो गई?" तपस्विनी ने उसे टालने का प्रयत्न किया, किन्तु, राजकुमारी का अत्यन्त आग्रह था; अतः वह उसे नहीं टाल सकी। तपस्विनी ने कहा—"सुरीपुर में मेरे पिता राजा सूरसेन राज्य करते थे। मेरा नाम माणिकी था। बचपन में ही माता का दुःखद-वियोग मुझे सहना पड़ा। पिता की छत्र-छाया में ही मैं पली-पुसी। मेरा अध्ययन पाठशाला में आरम्भ हुआ। विपत्ति पर विपत्ति आया

ही करती है। एक दिन जब कि मैं पाठशाला में अध्ययन निरत थी, विद्याधर मणिभद्र की दृष्टि मेरे पर पड़ी। वह मेरा अपहरण कर मुझे वैताढ्य पर्वत पर ले गया। उसने मुझे गौरी और प्रज्ञप्ति विद्या सिखाई। जब में यौवन में आ गई, उसने मेरे साथ विवाह करना चाहा। मणिभद्र के पुत्र का नाम सुभद्रवेग था। वह भी मेरे पर मोहित था। उसने भी मेरे साथ विवाह करना चाहा। पिता-पुत्र में संघर्ष हो गया। पुत्र ने पिता को मौत के घाट पहुँचा दिया। सुभ द्रवेग ज्योंही निष्कण्टक हुआ, किरणवेग ने उसे भी मार गिराया। दो-दो प्राणियों की हत्या मे मेरा कलेजा कांप उठा। मुझे अपने लावण्य पर घृणा हुई। मैं वहां से आंख बचा-कर आत्म-घात के लिए निकल पड़ी। जंगल में जाकर एक वट वृक्ष पर चढ़ी। सामने एक विशाल वापी थी। छलांग भरने को ज्यों ही मैं उद्यत हुई, पीछे से आकर किसी ने मुझे पकड़ लिया। मैंने मुड़कर देखा, पकड़ने वाला और कोई नहीं, किरणवेग ही था। वह मुझे अपने घर ले आया। मैं उसके साथ रहने लगी। एक दिन मैंने उसे अन्य स्त्री में आसक्त देखा। मैंने उसे बहुत रोका, किन्तु, वह नहीं माना। मेरे वैराग्य का यही निमित्त था। आंख चुराकर मैं भाग निकली और



तपस्विनी राजकुमारी रोहिणी को अपना जीवन-वृत सुनाते हुए

तब से गंगा-तट पर तापसी-वृत्ति स्वीकार कर रह रही हूँ। इन दिनों तीर्थ-यात्रा करती हुई मैं यहाँ आई हूँ।"

तपस्विनी ने अपनी बात आगे बढ़ाई। उसने भी राजकुमारी से आपबीती बताने के लिये कहा। परस्पर जब हृदय मिल जाते हैं, तब प्रच्छन्न रहस्य भी प्रकट होते समय नहीं लगता। राजकुमारी ने विस्तार से अपनी घटना बतलाई। साथ ही उसने कहा—"मेरी यह प्रतिज्ञा आज पूर्ण हो गई है। आप जैसा सुयोग्य पात्र भी जब मुझे मिल गया है, मैं अपनी विद्या आपको भेंट करूंगी। तपस्विनी ने उदासीनता दिखलाई। राजकुमारी ने आग्रहवश पर-काय-प्रवेशिनी विद्या उपहृत की।

निमित्त-वेत्ता व ज्योतिषी के समक्ष व्यक्ति अपने हृदय को खोलते हुए नहीं सकुचाता। जिस प्रसंग पर चर्चा करते हुए आत्मीय जनों से भी संकोच होता है, वह प्रसंग वहां सहज ही खुल पड़ता है। राजकुमारी ने तपस्विनी से कहा—"आपने जब नगर के सहस्रों व्यक्तियों के भाग्य का उद्घाटन किया है, तो मेरे भाग्य का भी तो कुछ उल्लेख करें। मेरा एक ही प्रश्न है, मेरे कौमार्य के अब कितने दिन और अवशिष्ट हैं ?"

तपस्विनी ने आंखें मूंद कर ध्यान का ढोंग रचा। कुछ क्षण बाद नेत्र खोले। बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—"राजकुमारी ! तेरा भविष्य तो बहुत समुज्ज्वल है। कुछ दिनों में ही तेरा भावी पति यहां पहुँचने वाला है। वह वीर, साहसी व उदार है। ऐसे पुरुष तो किसी भाग्यवती को ही प्राप्त होते हैं।"

राजकुमारी की उत्सुकता और बढ़ गई। मुस्कराते हुए उसने कहा—"माताजी ! उसे मैं कैसे पहचान सकूंगी ?"

तपस्विनी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"तेरे उद्यान-पाल के हाथ वह पुरुष पुष्प-कंचुकी भेजेगा। इसी लक्षण से तुम पहचान लेना।"

कुछ क्षण रुककर तपस्विनी ने पुनः कहा—"अब मैं अपने आश्रम की ओर लौटना चाहती हूँ। गृहस्थों के साथ अधिक निवास हमारी साधना में बाधक होता है।"

इच्छित कार्य सफल होने के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपने मूलरूप में ही आ जाता है। अम्बड़ ने तपस्विनी का वेष छोड़ दिया। अपना दिव्य रूप बनाया और देवपत्तन पहुँच गया। उद्यान-पाल के घर ठहरा। मोहिनी विद्या के प्रयोग से उसने सारे ही परिवार को अपनी मुट्ठी में कर लिया। उद्यान-पाल की पुत्री देमती

अम्बड़ के दिव्य रूप मे विशेष प्रभावित हुई। उसने अपनी माता के समक्ष अम्बड़ के साथ विवाह करने की योजना रखी। मां को वह प्रस्ताव बहुत उपयुक्त लगा। माता ने वह प्रस्ताव अम्बड़ के समक्ष रखा। अम्बड़ ने उसे स्वीकार कर लिया।

उद्यान-पाल के परिवार के साथ अम्बड़ की घनिष्ठ आत्मीयता हो गई। प्रतिदिन खुलकर बातें होतीं। एक दिन मालिन ने कहा—"कोई चमत्कार दिखाओ, जिससे राजा, प्रधानमन्त्री आदि सभी नागरिक चकित हो जायें।" अम्बड़ ने सब कुछ अवसर पर करने का आश्वासन दिया। मालिन दूसरे ही दिन फूलों के हार लेकर राज-सभा में जा रही थी। अम्बड़ ने उन्हें अपने हाथ में लिया, मंत्रों से अभिमंत्रित किया और उनमें कुछ चूर्ण डाल दिया। मालिन से बोला—"एक हार राजा को दे देना और एक प्रधान मंत्री को। किन्तु, और किसी को न देना।" मालिन ने राज-सभा में जाकर वैसा ही किया और घर लौट आई। अम्बड़ ने एक दूसरा उपक्रम भी किया। नगर-द्वार, राज-महल-द्वार व प्रधान मंत्री के गृह-द्वार पर अभिमन्त्रित चूर्ण डाल दिया। मन्त्र के प्रभाव से सभी द्वार कांपने लगे। नागरिकों ने जब यह देखा, सभी भयभीत हुए।

सभी का अनुमान था, कोई भूत-प्रेत आदि कुपित हो गया है। त्रसित होकर सभी अपने-अपने घरों में जाकर छुप गये। बहुत सारे अनुभवी व्यक्तियों का अनुमान था या तो यह नगर नष्ट हो जायेगा या पृथ्वी में समा जायेगा। यह विपत्ति बहुत बड़ी है। कुछ व्यक्तियों ने इस दैवी संकट से बचने के लिए किसी विशेष उपक्रम के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा कुछ उत्तर देना चाहता ही था कि इसी समय वह प्रधान मंत्री के साथ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

आपत्ति पर जब आपत्ति आती है, तो हर एक व्यक्ति व्याकुल हो जाता है। सभी नागरिक अत्यन्त चिन्तित हुए। वैद्यों को बुलाकर अनेक उपचार किये गये, किन्तु, कोई भी सफलता नहीं मिली। व्याधि बढ़ती ही गई। दूसरे दिन राजा और प्रधान मन्त्री शृगाल की तरह चिल्लाने लगे। तीसरे दिन वे दोनों नंगे होकर नाचने लगे और अनर्गल प्रलाप करने लगे। चौथे दिन वे कीचड़, धूल व राख में लोटने लगे और उन पदार्थों को जनता पर भी फेंकने लगे। पाँचवें दिन प्रधान मंत्री मृदंग बजाने लगा और राजा नाचने लगा। छठे दिन दोनों गलबाँह डाल कर व बूम पाड़कर रोने लगे। जनता समझ नहीं पाई, यह क्या हो

रहा है ?

अम्बड़ ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए सातवें दिन मालिन से पूछा—"नगर में सर्वत्र व्याकुलता कैसे दिखाई दे रही है ?" मालिन ने मुस्कराते हुए कहा—"यह माया आपकी ही तो है। अपने चमत्कार-प्रदर्शन को आप अब संवृत्त करें। आपकी कला का सभी लोहा मानने लगेंगे।" अम्बड़ ने सभी द्वारों को तत्काल निश्चल कर दिया। जनता में विश्रुति हो गई, निश्चित ही यह कोई सिद्धपुरुष है। सहस्रों व्यक्तियों ने करबद्ध होकर नगर व राजा की रक्षा की प्रार्थना की। अम्बड़ ने कहा—"मुझे यदि पूरा पारिश्रमिक दिया जाये, तो सब समुचित कर सकता हूँ। यह सब तो मेरे बायें हाथ का खेल है।" जनता ने कहा—आप जो भी चाहेंगे, आपको भेंट किया जायेगा। अम्बड़ ने कहा—"मैं पहले ही बता देना उचित समझता हूँ। आधा राज्य, राज-कन्या के साथ विवाह और प्रधान मन्त्री के घर का रविचन्द्र दीपक मेरी दक्षिणा होगी।"

नागरिक एक बार असमंजस में पड़े। अम्बड़ ने उनकी गहराई को मापते हुए कहा—"आपको पता नहीं है, ऐसी विद्याओं की सिद्धि में हमें कितना परि-

श्रम उठाना पड़ता है। प्राणों को हथेली पर रख कर हम चलते हैं। आपको यदि राज्य, राजकुमारी और दीपक इतने प्रिय हैं, तो रहने दीजिये। मुझे क्या लेना-देना है? राजा, प्रधान मन्त्री और नगर की रक्षा आप स्वयं करें। मैं तो एक विदेशी हूँ। घूमता-फिरता यहाँ आया हूँ। मैंने जब सुना कि सारा नगर ही संकट-ग्रस्त है, तो आपके उद्धार के लिए चला आया। आप यदि संकट-मुक्त होना ही नहीं चाहते, तो मैं क्या कर सकता हूँ?''

अम्बड़ ज्यों ही चलने को उद्यत हुआ, नागरिकों ने उसे घेर लिया। वे न उगल सके और न निगल सके। उन्होंने अम्बड़ का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अम्बड़ ने कुछ समय ध्यान-जप आदि का अनुष्ठान किया। राजा और प्रधान मन्त्री स्वस्थ हो गये। जनता ने उस खुशी में महोत्सव किया। अम्बड़ की कला जन-जन में चर्चा का मुख्य विषय बन गई। सभी ने अम्बड़ का विशेष आभार माना। नागरिकों ने राजा को सारी घटना सुनाई। राजा भी बहुत हर्षित हुआ। उसने बिना किसी संकोच के राजकुमारी मदिरावती का विवाह अम्बड़ के साथ कर दिया। अपना आधा राज्य भी उसे दिया। वैरोचन मन्त्री ने

रविचन्द्र दीपक भी दिया और साथ ही कनकमंजरी कन्या का विवाह भी अम्बड़ के साथ किया। मालिन ने भी अवसर देखा और देमती को अम्बड़ को भेंट कर दिया। तीनों कुल-लक्ष्मियों के साथ वह आनन्द-पूर्वक रहने लगा

एक दिन अम्बड़ ने पुनः सिंहपुर की ओर प्रस्थान किया। आगे बढ़ते हुए उसके कदम कारुणिक रुदन सुनकर सहसा रुक गये। उसने चारों ओर गौर से देखा। एक युवती विलाप कर रही थी। उसके कन्धे पर शिशु का शव था। अम्बड़ उसके पास आया। उससे रोने का कारण पूछा और साथ ही उससे अपना परिचय भी पूछा। युवती ने कहना आरम्भ किया—"मैं एक उद्यान-पाल की पुत्री हूं। माता-पिता ने मेरा विवाह इसी नगर मे किया था। मेरे एक पुत्र हुआ। एक दिन मैं पीहर आई। पीछे से पुत्र की मृत्यु हो गई। पुत्र के मुख से मैं अन्तिम शब्द भी नहीं सुन पाई, यह मुझे विशेष दुःख है। मैंने निश्चय किया है मैं पुत्र के साथ ही चिता में प्रवेश करूंगी। अम्बड़ ने उसे सान्त्वना दी और संसार की नश्वरता बतलाई। किन्तु, युवती का मन आश्वस्त न हो सका। उसने कहा—"तुम सत्य कह रहे हो, किन्तु, अन्तिम समय मैं इसके

पास नहीं थी; अतः दो बातें न कर सकी। तुम भी बताओ, दुःख होना स्वाभाविक है कि नहीं?" अम्बड़ ने कहा—"यदि पुत्र के साथ तुम्हारी बातचीत हो जाये, तो चिता-प्रवेश के संकल्प को छोड़ सकती हो?" युवती ने उसे स्वीकार किया।

प्रत्येक विद्या का जब बार-बार उपयोग किया जाता है, तो उसमें वृद्धि ही होती है और प्रत्येक कार्य में सफलता भी मिलती है। युवती ने पुत्र को एक जगह स्थापित कर दिया। अम्बड़ ने पर-काय-प्रवेशिनी विद्या का स्मरण किया। उसने पुत्र के शरीर में प्रवेश किया और माँ के साथ बातचीत की। पुत्र ने माँ को सान्त्वना देते हुए कहा—"माँ! तू क्यों रो रही है? मेरी मृत्यु तो मेरे कर्मों से हुई है। तू समाधि से रह! मेरे लिए शोक न कर।" पुत्र की पुनः मृत्यु हो गई।

वनमालिका अम्बड़ को अपने घर ले आई। भोजन आदि से उसका विशेष सम्मान किया। अम्बड़ को अधिकृत जानकारी मिल गई कि वह फूल आदि लेकर राज-महलों तक प्रतिदिन जाती है। शहर में भी यह बात विश्रुत हो गई कि यहाँ कोई सिद्ध-पुरुष आया हुआ है, जिसने वनमालिका के मृत पुत्र को भी जिला दिया था। यह उदन्त राजकुमारी रोहिणी ने

भी सुना। वनमालिका जब फूल लेकर राजकुमारी के पास आई, तो उसने उससे सारा वृत्तान्त सुना। वनमालिका ने अम्बड़ की बहुत प्रशंसा की। रोहिणी उससे बहुत प्रभावित हुई। वनमालिका जब जाने लगी, तो रोहिणी ने अम्बड़ को अपना प्रणाम कहलवाया। उसने आकर अम्बड़ से कह दिया।

अम्बड़ का इच्छित अब पूरा होने ही वाला था। उसने दूसरे दिन फूलों की एक कंचुकी बनाई और वनमालिका के हाथ रोहिणी को उपहार में भेजी। तपस्विनी का कथन रोहिणी की स्मृति पर उभर आया। वह पुलकित हो उठी। उसने मन-ही-मन सोचा, मेरा अब भाग्य निखर उठेगा। उसने अपने भाई से सारी घटना कही। भाई ने विशेष महोत्सव से अम्बड़ के साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया।

अभूतपूर्व सफलता के साथ अम्बड़ ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। राज्य-वैभव, नव परिणीता पत्नियाँ और रविचन्द्र दीपक; उसके साथ थे। नगर पहुँच कर सबसे पहले वह गोरख योगिनी के पास गया। प्रणतिपात के साथ उसने रविचन्द्र दीपक योगिनी के समक्ष रखा। सारा वृत्तान्त सुनाया। योगिनी ने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशंसा की। अम्बड़ अपने घर लौट आया।

❀ ❀ ❀

सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड

पाँच आदेशों में जब अम्बड़ सब तरह से सफल हो गया, तो उसका साहस शतगुणित हो गया। सफलता पौरुष में बल भरती है। शेष दो आदेशों को प्राप्त करने और उन्हें शीघ्र ही पूर्ण करने के लिए अम्बड़ बहुत उत्सुक था। कुछ दिन बाद वह पुनः गोरख योगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। योगिनी ने आदेश दिया—"सौवीर देश में सिन्धु नामक पर्वत है। कोडिन्न नामक नगर में देवचन्द्र राजा राज्य करता है। इसी शहर में वेद और वेदांगों का अधिकारी विद्वान श्रीसोमेश्वर ब्राह्मण भी रहता है। उसके पास सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड है। उसे ले आ।"

अम्बड़ ने तत्काल ही उस दिशा में प्रस्थान किया। मार्ग में एक नदी थी। केले के पत्तों से छाई हुई एक कुटिया उसमें तैर रही थी। अम्बड़ ने इसे गौर से देखा। कुटिया के पीछे उसे एक योगी दिखाई दिया। कुटिया में एक सुकुमाला मृगी थी, जो सूर्य-किरणों से

भी प्रतिस्पर्धा कर रही थी। योगी उस पर पंखों से हवा झल रहा था। यह एक असाधारण घटना थी। अम्बड़ के रोंगटे खड़े हो गये। उसने प्रतिकारात्मक कदम उठाया। वहती हुई कुटिया को उसने स्तम्भित कर दिया। आकाश में उछला, अपना भयंकर रूप बनाया और योगी पर झपटा। पांव पकड़ कर योगी को आकाश में उछाल डाला। अम्बड़ और योगी में डटकर संघर्ष हुआ। अम्बड़ विजयी हुआ। योगी मारा गया।

रहस्य के जब प्रतर खुलते हैं, तब उसमें से विशेष रहस्य का उद्घाटन होता है। अम्बड़ कुटिया को तट पर ले आया। कुटिया के अन्दर आया। एक-एक वस्तु को उसने ध्यान से देखा। मृगी सोने की जंजीर से बंधी हुई थी। वहीं स्वर्णमय पुरुष, दो रत्न कुण्डल व श्वेत-रक्त वर्ण बेंत की दो कठोर छड़ियाँ भी पड़ी थीं। अम्बड़ उन वस्तुओं को इस रूप में देख कर अत्यन्त चकित हुआ। वस्तुस्थिति की गहराई में जाने के अभिप्राय से उसने लाल कठोर उठाई और उससे मृगी को पीटा। एक क्षण में सारा वातावरण ही बदल गया। मृगी अत्यन्त सुरूपा युवती हो गई। अम्बड़ ने सारी घटना पर प्रकाश डालने के लिये युवती से अनु-

रोध किया।

दुःखी व्यक्ति को जब कभी आत्मीयता प्राप्त होती है, तो उसका दुःख आंखों से छलक पड़ता है। गीली आँखों से उसने कहा—"बंग देश में भोजकटक नगर है। वैरसिंह वहाँ का राजा है। मैं उसी राजा की रत्नवती पुत्री हूं। पिता की आज्ञा से एक दिन मैं विलास कूप से पारद लाने के लिए चली। ज्यों ही अश्वारूढ़ हुई, घोड़ा मुझे उड़ा ले चला। वह विपरीत शिक्षा का था। मैं उसकी इस प्रवृत्ति से अनभिज्ञ थी। मुझे वह एक घने जंगल में ले गया। वहाँ मुझे एक योगी मिला। वह मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। तब से ही उसने मेरे पर अनेक उपक्रम किये। मेरा यह मृगीरूप भी उसी का एक अंग था।

योगी एक दिन राज-सभा में आया। मेरे पिताजी व अन्य सभासदों को चकित करने के अभिप्राय से उसने वहाँ एक सुपल्लवित केले का स्तम्भ प्रकट किया। पिताजी ने योगी का विशेष सम्मान किया। उपस्थित सभी व्यक्ति उसके चमत्कार से प्रभावित थे। राजा ने कोई विशेष चमत्कार दिखाने का भी अनुरोध किया। योगी ने कहा—यदि चमत्कार देखना चाहते हो, तो इस स्तम्भ को चीर डालो। राजा

ने अपनी तलवार से उसे चीर डाला। उस स्तम्भ के बीच से आभूषणों से अलंकृत एक युवती तत्काल बाहर आई। मेरे पिताजी और उपस्थित सभी सभा-सद् उसके सौन्दर्य पर न्योछावर हो गये। पिताजी ने जानना चाहा, जो कुछ भी दीख रहा है, वह सत्य है या इन्द्रजाल? योगी ने उत्तर दिया—"यह मेरे हाथों की सफाई नहीं है। यह तो वास्तविकता है। यह युवती मणिवेग विद्याधर की पुत्री है और इसका नाम रत्नमाला है। आपको अर्पित करने के अभिप्राय से ही मैं इसे यहां लाया हूं।" राजा को बहुत प्रसन्नता हुई।

बिना सोचे और बिना किसी प्रयत्न के यदि श्रेष्ठ वस्तु की उपलब्धि होती है, तो कौन ऐसा होगा, जो अपने भाग्य को न सराहता होगा। राजा की बाछें खिल उठीं। योगी ने कहा—"यह युवती आपको तब प्राप्त होगी, जब आप मेरा एक कार्य करेंगे।" राजा ने जिज्ञासा की, तो योगी ने कहा—"मैं एक विशेष साधना कर रहा हूं। आगामी अष्टमी की सन्ध्या को उसकी समाप्ति होगी। उस दिन आपको रत्नवती के साथ श्रीपर्णा नदी के तट पर पधारना होगा और उत्तर साधक का दायित्व संभालना होगा।" राजा ने

बिना कुछ सोचे ही उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। योगी अपने घर पर लौट आया।

अविचारित कार्य का परिणाम सुखद नहीं होता। राजा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के बारे में जब मन्त्री को ज्ञात हुआ, तो उसने विरोध किया। उसने कहा—"ऐसे योगी निर्दय और धूर्त होते हैं। राजकुमारी के साथ आपका वहाँ जाना कतई उचित नहीं है।" राजा ने उत्तर में कहा—"तेरा कहना ठीक है। उस समय मैं यह सोच नहीं पाया। किन्तु, अब मुकरना भी तो उचित नहीं है। जो भवितव्य है, वह होगा।"

राजा और मन्त्री का वार्तालाप चल ही रहा था कि योगी भी वहीं पहुँच गया। साथ चलने के लिए तथा राजा को सज्जित होने के लिए उसने कहा। राजा ने तैयारी आरम्भ की। योगी ने राजा को अकेले ही तैयारी में देखा, तो पूछ ही लिया—"राजकुमारी कहाँ है?" राजा ने उत्तर दिया—"उसका वहाँ क्या प्रयोजन है?" योगी ने सरोष कहा—"राजन्! अपने वचन से इस प्रकार मुकर जाना अच्छा नहीं है। यदि वचन-भंग किया गया, तो निश्चित ही कुछ विघ्न उपस्थित होगा। राजकुमारी के बिना मेरी विद्या भी सिद्ध नहीं हो सकेगी।"

विवश होकर पिताजी ने मुझे भी साथ ले लिया। हम सब श्रीपर्णा नदी के तट पर पहुँचे। योगी ने मार्ग में चलते हुए जंगल से श्वेत और रक्त कठोर की दो छड़ियाँ भी ले लीं। योगी हमें साथ लेकर एक गुफा में गया। वहाँ एक अग्नि-कुण्ड था, जो प्रज्ज्वलित हो रहा था। वह वहाँ बैठ कर हवन करने लगा। वहाँ का वातावरण देखते ही ज्ञात हो गया कि आज जाल में फँस गये हैं, किन्तु, तब हो भी क्या सकता था? कुछ क्षण बाद योगी मुझे अपनी कुटिया में ले गया। श्वेत कठोर की छड़ी मे पीट कर उसने मुझे मृगी बना दिया और स्वर्ण-शृंखला से वहीं बाँध दिया। योगी पुनः अग्नि-कुण्ड के पास आया। पिताजी के हाथ में उसने तीन गोलियाँ देते हुए कहा—"इनको अग्नि-कुण्ड में डालना है। साथ ही मुझे नमस्कार करते हुए यह कहना है, मेरे सान्निध्य से योगीराज की विद्या सिद्ध हो।" पिताजी ने सब-कुछ स्वीकार कर लिया। वे तो एक बन्दी की तरह थे। गोलियाँ डाल कर पिताजी ने ज्यों ही योगी को नमस्कार किया, योगी ने पिताजी को अग्नि-कुण्ड में डाल दिया। देखते-ही-देखते पिताजी स्वर्ण-पुरुष के रूप में बदल गये और निश्चेष्ट हो गए। योगी का मनचाहा हो गया था। उसने

स्वर्ण-पुरुष आदि सारी सामग्री और मुझे भी साथ लेकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। नदी में तैरते हुए, जब हम यहाँ पहुँचे तो आपसे साक्षात्कार हुआ। योगी को मार कर आपने मेरा उद्धार किया; अतः मैं आपकी बहुत-बहुत आभारी हूँ।

राजकुमारी ने आपबीती तो सारी कह डाली, किन्तु, कुण्डलों की कथा अवशेष रह गई थी। अम्बड़ ने उस ओर संकेत करते हुए कहा—"इनका इतिहास भी बतलाओ ?"

रत्नवती ने कहना आरम्भ किया—"जब हम मार्ग में जा रहे थे, कुण्डलों के बारे में मुझे योगी ने बताया था—एक बार मैंने कालिका देवी की आराधना की। उसने प्रसन्न होकर ये दो कुण्डल दिये। एक कुण्डल को यदि आकाश में फेंक दिया जाये, तो वर्ष-भर चन्द्रमा की तरह शीतल प्रकाश बरसता रहेगा। इसी प्रकार दूसरे कुण्डल को यदि आकाश में फेंका जाये, तो दो वर्ष तक सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश सर्वत्र व्याप्त रहेगा।

जब सारा रहस्य हस्तगत हो गया, तो अम्बड़ ने अपना मौलिक रूप प्रकट किया। राजकुमारी रत्नवती उसे देखते ही मोहित हो गई। अम्बड़ की असाधारण

विशेषताओं के प्रति तो वह नतकन्धर थी ही । उसने विवाह का प्रस्ताव रखा । अम्बड़ ने उसे स्वीकार कर लिया । दोनों का वहीं गन्धर्व विधि से विवाह हो गया ।

रत्नवती को अपने पिता की याद आई । उसने अम्बड़ से कहा—"अब आपको मेरे पितृ-नगर पधारना चाहिए । मेरा भाई समरसिंह राज्य-भार का वहन कर रहा है । पिताजी और मेरे बारे में उसे कुछ भी पता नहीं है । शीघ्र ही यदि हम वहीं पहुँच जाते हैं, तो वह राज्य की व्यवस्था भी सुचारु कर सकेगा और पिताजी के बारे में भी कुछ प्रयत्न कर सकेगा ।" अम्बड़ को रत्नवती का प्रस्ताव उचित लगा । आकाश-मार्ग से वे दोनों भोज कटक की ओर चल पड़े । बहुत शीघ्र ही सीमा के समीप पहुँच गये । नगर शत्रु-सेना से घिरा हुआ था । रत्नवती ने अपने भाई की सुरक्षा का निवेदन किया । अम्बड़ ने भयानक रूप बनाया । हाथ में मुद्गर लेकर वह शत्रु-सेना पर टूट पड़ा । शत्रु-सेना के पाँव खिसक गये । सभी सैनिक अपने प्राण बचाने के लिये जिस ओर अवकाश मिला, भाग छूटे ।

नगर का उपद्रव शान्त हो गया, तो रत्नवती ने शहर में प्रवेश किया । भाई को सारी घटना बतलाई । समरसिंह ने अम्बड़ का हार्दिक स्वागत किया । विशेष

उत्सव के साथ वह उसे राजभवन में ले आया। अम्बड़ ने सारा राज्य समरसिंह को प्रदान किया। समरसिंह अम्बड़ के उपकार से दब गया। समरसिंह ने रत्नवती का विवाह आडम्बरपूर्वक अम्बड़ के साथ किया।

अम्बड़ को सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड की आवश्यकता थी। उसे प्राप्त करने के लिए ही वह घूम रहा था। एक बार पश्चिम रात में रत्नवती को सोती हुई छोड़कर वह आकाश-मार्ग से चला। कूर्मक्रोड़ नगर के समीप जा उतरा। उसे सोमेश्वर ब्राह्मण के घर का पता लगाना था। एक व्यक्ति मिला। उससे उसने सोमेश्वर का घर पूछा। सम्मुखीन व्यक्ति ने कहा—"इस शहर में इक्कीस सोमेश्वर ब्राह्मण हैं। तुम किसका घर पूछ रहे हो?" अम्बड़ असमंजस में पड़ गया। वह निराश होकर समीपवर्ती कामदेव यक्ष के मन्दिर में आ गया। निराश बैठा सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा। उसे पद-चाप सुनाई दी। वह जग तो रहा ही था। उस आहट से विशेष सावधान हो गया। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। एक युवती ने मन्दिर में प्रवेश किया। उसकी दृष्टि युवती के क्रिया-कलापों पर केन्द्रित हो गई। अम्बड़ बिल्कुल प्रच्छन्न था। युवती ने मन्दिर को विजन समझा। वह एक पाषाण-पुतली के पास जाकर रुक

गई। पुतली गुस्से में भरकर पृथ्वी पर गिरी। उसने साक्रोश उस युवती से पूछा—"चन्द्रकान्ते ! आज तू ने यह विलम्ब कैसे किया ?"

आगन्तुक युवती ने उत्तर दिया— "मेरे पिता सोमेश्वर आज राजा के पास से विलम्ब से ही लौटे थे। उनके घर लौटे बिना मैं कैसे आ सकती थी ?"

दोनों साथ हो गई और कामदेव की प्रतिमा के सम्मुख नृत्य करने लगीं। नृत्य, हास्य व गीत से मन्दिर का कोना-कोना खिलने लगा। अम्बड़ ने अपने को प्रकट किया। उसने हास्य के साथ पूछ ही लिया— "बालाओ! तुम कौन हो ?" एक अपरिचित व्यक्ति की अचानक उपस्थिति से वे डर गई। फिर भी चन्द्रकान्ता ने साहस से काम लिया। कुछ भी उत्तर देने से पूर्व उसने उसी से पूछ लिया—"महाभाग। तुम कौन हो ? अपना परिचय तो दो।"

अम्बड़ बातों में बड़ा चतुर था। उसने कहा— "मेरा नाम पचंशीर्ष है और मैं पश्चिम देश का निवासी हूं।"

चन्द्रकान्ता की, अम्बड़ के उत्तर से, कोई उत्सुकता नहीं बढ़ी। उसने उदासीनता का भाव व्यक्त किया। कुछ क्षण रुक कर पुतली ने उससे कहा—"कितना



चन्द्रकान्ता व पुतली कामदेव के सामने नृत्य करते हुए।

सुन्दर हो, आज हम वासवदत्ता के घर चलें।" चन्द्रकान्ता ने तत्काल उत्तर दिया—"वहाँ जाना तो सुन्दर ही रहेगा, किन्तु, हमारा सारथी कौन होगा ?" पुतली के पास उसका भी उत्तर था। उसने तत्काल कहा—"इस कार्य में यह पंचशीर्ष हमारा सहयोगी हो सकता है। चन्द्रकान्ता ने पंचशीर्ष के समक्ष सारथी बनने का प्रस्ताव रख दिया। पचंशीर्ष यह जानने को उत्सुक था कि वे कहाँ जाना चाहती हैं ? दोनों ने इस जिज्ञासा का समाधान दिया—पाताल लोक।

अम्बड़ कुछ भी करने से पूर्व अपने लाभ-अलाभ को विशेष तोलता था। उसने भी शर्त रख दी, सारथी बन सकता हूँ, किन्तु, जो मैं चाहूँ, वह विद्या मुझे पहले ही देनी होगी। दोनों ने ही उसे स्वीकार किया। पंचशीर्ष को साथ लेकर वे दोनों प्रासाद से बाहर आईं। बच्चों के खिलौने जैसा एक छोटा-सा रथ वहाँ खड़ा था। वे दोनों उस पर बैठ गईं और पंचशीर्ष से रथ हाँकने के लिए कहा। वह चकित इधर-उधर देखता रहा। बैलों का कहीं अता-पता भी नहीं था। उसने तत्काल कहा—"बिना बैलों के भी कभी रथ चला है ?" दोनों ही सखियाँ खिल-खिलाकर हँस पड़ीं। उन्होंने पंचशीर्ष के प्रति व्यंग कसते हुए कहा—"बैल

होने पर तो बच्चे भी रथ को चला सकते हैं, फिर उसमें आपका क्या कौशल है ?" कुछ रुककर वे दोनों फिर बोलीं—"आप इसकी चिन्ता न करें। रथ पर सवार हो जायें। सब कुछ स्वतः हो जायेगा।" पंचशीर्ष का स्वाभिमान चमक उठा। वह रथ पर बैठ गया। चन्द्र-कान्ता ने विद्या-बल से रथ को आकाश में उड़ाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु, वह उसमें सफल नहीं हुई। पंचशीर्ष ने रथ पर सवार होते ही अपने विद्या-बल से उसे स्तम्भित कर दिया था। वे दोनों ही इससे अज्ञात थीं। जब रथ नहीं उड़ा, तो वे एक-दूसरे की बगलें ताकने लगीं। कुछ ही क्षण में उन्हें आभास हो गया, यह इस सारथी की ही कलाबाजी है। उनका अभिमान चूर-चूर हो गया। दीन-भाव से दोनों ही बोलीं—"आपने हमें यह दण्ड क्यों दिया ? हमने आपका कोई अपराध तो नहीं किया है ? हम आपका लोहा मानती हैं। आप हमें कष्ट-मुक्त करें।"

पंचशीर्ष ने अवसर का लाभ उठाया। उसने कहा—"रथ तभी आगे बढ़ सकेगा, जब कि बिना बैल ही रथ चलाने की विद्या पहले मुझे सिखला देंगी।" दोनों को ही वह प्रस्ताव मानना पड़ा। पंचशीर्ष को जब विद्या प्राप्त हो गई, रथ भी पवन वेग से आगे

बढ़ गया। दोनों ही वासवदत्ता के घर पहुँच गईं। वासवदत्ता ने दोनों का हार्दिक स्वागत किया। उन्हें उच्च आसन पर बिठलाया और फल-पुष्प अर्पित किये। दोनों ने वे फल-पुष्प सारथी को प्रदान कर दिये। वासवदत्ता के लिए वह अपरिचित था। पूछने पर उन्होंने बताया—"यह हमारा नया सारथी है।"

तीनों सखियाँ परस्पर बातें कर रही थीं। इसी शहर में उनकी एक अन्य सखी रहती थी, जिसका नाम नागश्री था। उसने अपना सेवक भेजकर तीनों को अपने यहाँ के लिए निमंत्रण दिया। वासवदत्ता ने आगन्तुक सखियों से पूछकर वह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वे सभी सारथी के साथ वहाँ आईं। नागश्री ने उनका भूरिश: स्वागत किया। चारों सखियाँ आमोद-प्रमोद में लीन थीं। पंचशीर्ष ने हाथ की सफाई दिखलाई। उसने पान के चार बीड़े तैयार किये। फल-चूर्ण से भावित कर उसने चारों को दिये। खाते ही चारों मृगी हो गईं। पाताल में हाहाकार हो गया। पंचशीर्ष मृगी-रूप में चन्द्रकान्ता को लेकर शहर में आया। उसने उसे वहाँ छोड़ दिया। वह सीधी अपने घर पहुँच गई। राजपुरोहित को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसे बहुत दु:ख हुआ। राजा भी इस घटना से

चिन्तित हुआ। वह राजपुरोहित के घर की ओर चला। राजा ने बिना बैल ही रथ चलाते हुए पंचशीर्ष को देखा। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसे वह एक सिद्ध-पुरुष लगा। उसने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"क्या तुम कोई देव या विद्याधर हो, जो इस तरह बिना बैल ही रथ चला रहे हो ?"

पंचशीर्ष ने अपनी बात को एक नया आकार दिया। उसने कहा—"मैं विद्याधर हूँ।" और अम्बड़ ने अपना दिव्य रूप प्रकट किया। जनता स्वतः नतमस्तक हो गई। राजा ने आगे बढ़कर व श्रद्धाभिभूत होकर निवेदन किया—"मेरे पुरोहित की कन्या दैव-वश मृगी हो गई है। मेरे पर अनुग्रह कर आप उसका उद्धार करें।" पंचशीर्ष ने तत्काल उत्तर दिया—"राजन् ! हम लोग ऐसे सांसारिक कार्यों में नहीं उलझते। फिर भी आपका आग्रह है, तो इसे करूँगा।"

राजा पंचशीर्ष को साथ लेकर राज-पुरोहित के घर आया। मृगी-रूप में चन्द्रकान्ता उसके समक्ष प्रस्तुत की गई। पंचशीर्ष ने अच्छी तरह से देखा। कुछ समय चिन्तन का भी ढोंग रचा। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—"यह कार्य बहुत दुष्कर है। इसमें मुझे अपनी बहुत सारी शक्ति का व्यय करना होगा। आप मुझे

इसके पारिश्रमिक के तौर पर क्या देंगे ?"

संकट में फंसा हुआ व्यक्ति सब कुछ देने को प्रस्तुत हो जाता है। राजा ने कहा—"जो चाहोगे, दिया जायेगा।" अम्बड़ ने कहा—"मैं तो विशेष कुछ नहीं चाहता। केवल एक वस्तु चाहता हूँ। और वह है, सोमेश्वर का सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड। राजा ने उसे स्वीकार किया। अम्बड़ ने लाल रंग की कठोर से मृगी पर दो-चार प्रहार किये। मृगी पुनः चन्द्रकान्ता हो गई। चारों ओर हर्ष छा गया। सोमेश्वर को जैसे नये प्राण मिल गए। उसने सर्वार्थसिद्धि दण्ड अम्बड़ को भेंट किया और अपनी कन्या चन्द्रकान्ता का विवाह भी उसी के साथ किया।

चन्द्रकान्ता कष्ट से मुक्त हो गई। उसे अपनी तीनों सखियों की याद आई। उसने उनको भी मुक्त करने के लिए अम्बड़ से प्रार्थना की। अम्बड़ पाताल पुरी पहुँचा और उसने वहाँ पुत्तलिका, नागश्री और वासवदत्ता को भी मुक्त किया।

अम्बड़ कुछ दिन पाताल पुरी रुका। वहाँ से कोडिन्न नगर लौट आया। राजा देवचन्द्र से अनुमति पाकर अपने नगर लौटा। भोजकटक नगर में प्राप्त वस्तुएँ भी उसने साथ लीं। अत्यन्त उल्लास और

सफलता के साथ वह रथनूपुर आया। सबसे पहले उसने गोरख योगिनी से भेंट की। श्रद्धापूर्वक सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड उसके चरणों में उपस्थित किया। अम्बड़ की सफलता से योगिनी को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अम्बड़ को शतशः साधुवाद दिया और उसके पौरुष की प्रशंसा की। योगिनी के आशीर्वाद के साथ अम्बड़ अपने घर पहुँचा।

❀ ❀ ❀

मुकुट का वस्त्र

अम्बड़ ने कभी विफलता नहीं देखी। असाध्य कार्य भी निमेष मात्र में उसके लिए सहज हो गये। योगिनी के आदेशों का प्रत्यक्ष फल उसने देख लिया था। योगिनी अब उसकी पूजनीया हो चुकी थी। उसके प्रत्येक आदेश में अम्बड़ के जीवन का नया उन्मेष था; अतः उन्हें पूर्ण करने में वह तत्पर रहता था। कुछ दिन बीत गये, तो वह पुनः गोरख योगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। सातवाँ आदेश प्रदान करने के लिए उसने प्रार्थना की। योगिनी ने कहा—"दक्षिण दिशा में सोपारक नगर है। वहाँ के राजा का नाम चण्डीश्वर है। उसके मुकुट में एक वस्त्र है। उसे ले आ।"

योगिनी का आशीर्वाद पाकर अम्बड़ दक्षिण दिशा की ओर चला। गाँवों व नगरों को लाँघता हुआ वह सोपारक नगर के समीप पहुँचा। वहाँ देवब्रह्म नामक एक उद्यान था। वह फलों व फूलों से लदा हुआ था।

अम्बड़ ने उस उद्यान को जी भर कर देखा। एक वृक्ष के सरस व सुगन्धित फलों को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया। फल लेने के लिए वृक्ष की ओर उसने हाथ बढ़ाया। वृक्ष की शाखा पर एक बन्दर बैठा था। उसने कहा—"पहले मेरा एक वाक्य सुनो। यदि उसे सुने बिना हाथ बढ़ाया, तो तुम विरूप हो जाओगे।" अम्बड़ निश्चल हो गया। बन्दर ने कहना आरम्भ किया—"इसी वाटिका के दक्षिण भाग में तुम्बगिरी पर्वत है। उस पर्वत पर आम का एक वृक्ष है। पहले तुम उसके फल ले आओ। बाद में प्रसन्नता-पूर्वक इस वृक्ष के फल-पत्ते लेना।"

अम्बड़ का मन विस्मय और विनोद से भर गया। उसके मस्तिष्क में रह-रह कर एक ही प्रश्न टकरा रहा था, उस आम के वृक्ष की क्या विशेषता है ? इस वृक्ष और उस वृक्ष का भी परस्पर क्या कोई सम्बन्ध है ? यदि है तो क्या हो सकता है ? अम्बड़ के कदम उसी वृक्ष की ओर बढ़ गये। वृक्ष के समीप पहुँच कर ज्यों ही उसने फल तोड़ने का प्रयत्न किया, शाखायें आकाश की ओर खिसक गईं। अम्बड़ ने जिस ओर भी हाथ डाला, उस ओर ऐसा ही हुआ। किन्तु, अम्बड़ ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसने एक छलांग भरी

और वह वृक्ष पर चढ़ बैठा । वृक्ष की जड़ें उखड़ गईं और वह आकाश में उड़ने लगा । अम्बड़ चकित हुआ, किन्तु, भीत नहीं हुआ । वह वृक्ष पर बैठा चारों ओर के अद्भुत दृश्य देखता रहा । वृक्ष भी उड़ता हुआ नन्दन वन में पहुंच गया । वृक्ष वहाँ रुका । अम्बड़ नीचे उतरा । इतनी दूर आ जाने पर भी आश्चर्यमय जगत् जैसे कि उसके पीछे ही दौड़ रहा है ।

अनजाने प्रदेश में पहुँच कर व्यक्ति सहसा चारों ओर नजर दौड़ाता ही है । अम्बड़ ने भी जब ऐसा ही किया, तो उसे एक जलता हुआ अग्नि-कुण्ड दिखाई दिया । चारों ओर नाना अलंकारों से सुसज्जित युव-तियों का गमनागमन हो रहा था । मृदंग बज रहे थे । वीणा की मधुर स्वर-लहरी वातावरण को मुखर कर रही थी । चकित नेत्रों से अम्बड़ ने उस सारे दृश्य को देखा । एक दिव्य पुरुष, जो नाना अलंकारों से सुसज्जित था, अम्बड़ के पास आकर खड़ा हो गया । मधुर हास्य के साथ पूछा—"वह बन्दर कैसा था ?" वह आम का वृक्ष कैसा था?" बन्दर और आम्र वृक्ष का नाम सुनते ही अम्बड चौंका । उसको इसमें कोई रहस्य लगा । उसका उद्घाटन कराने के लिए उसने प्रश्न किया— "तुम कौन हो ? वह बन्दर कौन था ?

यह अग्नि-कुण्ड क्यों है ? यह नाटक क्यों हो रहा है?'

आगन्तुक सज्जन ने कहा--पाताल लोक में लक्ष्मीपुर नगर है। वहाँ के राजा का नाम हंस है। मैं वही हंस हूँ। मैंने ही बन्दर और आम्र-वृक्ष का रूप बनाया था। मैं उनके माध्यम से आपको बुलाने के लिये आया हूँ। विद्याधरों ने मुझे आपको आमन्त्रित करने का दायित्व सौंपा है। इसकी पृष्ठ-भूमि है। शिवंकर नगर में शिवंकर राजा राज्य करता है। उसके कोई पुत्र नहीं है। पुत्र के लिए उसने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु, सफलता नहीं मिली। विश्वदीप तपस्वी ने राजा की भक्ति से रीझ कर उसे एक फल प्रदान किया। तपस्वी ने उसे बताया कि यदि तू अपनी पत्नी के साथ बैठ कर इस फल को खायेगा तो, निश्चित ही तेरे पुत्र होगा। राजा ने मूर्खता का परिचय दिया। उस फल को राजा-रानी दोनों को मिलकर खाना था, राजा ने अकेले ही खा लिया। कुछ दिनों बाद राजा के उदर में भयंकर पीड़ा होने लगी। वैद्यों ने निदान किया कि राजा के उदर में तो गर्भ है। गर्भ की वृद्धि होने लगी। राजा असमंजस में पड़ गया। उसे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ। वह धवल गृह में ही रहने लगा। नागरिकों से मिलना-जुलना सब बन्द कर दिया। यह असंभावित बात विद्युत् वेग की

तरह सारे शहर में फैल गई। सबके मुख पर एक ही चर्चा थी, राजा अब असमय ही काल-कवलित हो जायेगा।

अविचारित कार्य का परिणाम भी दुःखद ही होता है। सातवें महीने राजा के पेट में पीड़ा होने लगी। असमाधि में ही उसका समय व्यतीत होने लगा। प्राण कण्ठों में आ गये। सभी विद्याधर एकत्र हुए। राजा की कष्ट-मुक्ति के लिये उन्होंने विशेषतः विमर्षण किया। एक विद्याधर ने सुझाव दिया—इस वेदना का निवारण तब हो सकेगा, जब धरणेन्द्र का स्मरण किया जायेगा। यह सभी को उचित लगा। किन्तु, दूसरे विद्याधर ने विप्रतिपत्ति उठाई। धरणेन्द्र की आराधना करेगा कौन ? राजा तो वेदना से आकुल-व्याकुल हो रहा है। एक क्षण भी उसे चैन नहीं है। राजा शिवशंकर के भाई ने इसका एक उचित समाधान खोज निकाला। उसने कहा—"भाई के स्थान पर आराधना मैं करूंगा। यह सुझाव सभी को उपयुक्त लगा। सभी ने उसे अविलम्ब साधना करने के लिए कहा। शुभ दिन और शुभ वेला में आराधना का प्रारम्भ किया गया। सातवें दिन धरणेन्द्र ने प्रत्यक्षतः दर्शन दिये। शिवशंकर के अनुज की बाछें खिल उठीं। उसने तत्काल

निवेदन किया—"मैंने विशेष प्रयोजन से आपका स्मरण किया है। मेरे भाई वेदना से व्याकुल हो रहे हैं। आप उन्हें कष्ट-मुक्त करें।"

मंत्र और औषधि से असंभावित कार्य भी संभावित हो जाते हैं। धरणेन्द्र का प्रत्यक्ष होना, असंभव कार्य था, किन्तु, राजा के अनुज के मंत्र-जाप से वह संभव हो गया। धरणेन्द्र भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर में गया। वहाँ से उसने प्रतिमा का स्नात्र-जल ग्रहण किया और लाकर उसे दिया। उसे कहा—यह पानी अपने अग्रज को पिलाओ, वेदना शान्त हो जाएगी। धरणेन्द्र अदृश्य हो गया।

पानी ने चामत्कारिक कार्य किया। उदर-वेदना शान्त हो गई। साढ़े आठ महीने बाद राजा के पेट में पुनः व्यथा जागृत हुई। उस समय भी धरणेन्द्र की आराधना की गई। धरणेन्द्र ने वही स्नात्र-जल लाकर दिया। वेदना शान्त हो गई। राजा ने सुखपूर्वक प्रसव किया। चन्द्र की कान्ति के समान पुत्र का जन्म हुआ। राजा की बहुत दिनों की साध पूरी हो गई। किन्तु, उसकी मृत्यु भी उसी समय हो गई। धरणेन्द्र ने पुत्र को राज-सिंहासन पर बिठाया। उसका नाम रखा गया, धरणेन्द्र चूड़ामणि। उस कुमार के लिए ही धरणेन्द्र ने यह पाताल

पुरी बसायी। इस अग्नि-कुण्ड में होते हुए वहाँ जाने का मार्ग है।

नगर-निर्माण के समय अन्यान्य सभी आवश्यक बातों की ओर भी धरणेन्द्र का ध्यान गया। जनता की उपासना के लिए व सब विघ्नों के शमन के लिए भगवान् पार्श्वनाथ का एक स्वर्ण-मन्दिर भी उसने बनाया। सभी विद्याधरों को धरणेन्द्र ने आज्ञा दी, सोलह वर्ष से अधिक आयु का कोई भी विद्याधर चार पर्व-तिथियों में भगवान की प्रतिमा के दर्शन किये बिना भोजन नहीं कर सकेगा। यदि कोई करेगा, तो वह विद्या से भ्रष्ट हो जाएगा तथा कोढ़ी हो जाएगा। राजा धरणेन्द्र चूड़ामणि के पास जो चन्द्रकान्त मणि का सिंहासन है, वह भी धरणेन्द्र द्वारा ही दिया गया है। आज अष्टमी का दिन है; अतः विद्याधर वहाँ एकत्र होकर स्नात्र, नृत्य, गान आदि कर रहे हैं।

सारा इतिवृत्त तो अम्बड़ के सामने आ गया, पर, उसे यहां क्यों बुलाया गया, यह रहस्य अभी तक आवृत्त ही था। उसने प्रश्न किया तो राजा हंस ने कहा—एक बार पर्वतिथि के दिन राजा धरणेन्द्र चूड़ामणि ने भगवान् की प्रतिमा को बिना नमस्कार किये भोजन कर लिया। उस दिन से राजा

विद्या-भ्रष्ट हो गया और साथ ही भयंकर कुष्ठ रोग से भी पीड़ित हो गया। धरणेन्द्र का पुनः स्मरण किया गया। धरणेन्द्र ने दर्शन तो दिये, किन्तु, वे रोष में थे। उन्होंने कहा—"मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया गया। उसी का दुष्परिणाम तू भोग रहा है। मेरे लिए अब किसी प्रकार की सहायता करना सम्भव नहीं है।" धरणेन्द्र अदृश्य हो गये। रानी ने राजा की कष्ट-मुक्ति के लिए विशेष तप का अनुष्ठान आरम्भ किया। चारों ही प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान कर वह धरणेन्द्र के जाप में लीन बैठी है। आज इक्कीस दिन बीत गये। उसके प्राण भी कण्ठों में आ गये हैं। धरणेन्द्र का रोष कुछ-कुछ शान्त हुआ। उसने रानी को स्वप्न में दर्शन दिये। साथ ही उन्होंने राजा के जीवन की सुरक्षा का एक उपाय बताया: सौपारक पुर के निकट देव ब्रह्म नामक वाटिका है। अम्बड़ नामक एक सिद्ध पुरुष उस वाटिका में आया है। वह फल तोड़ने के लिए एक वृक्ष की ओर हाथ बढ़ायेगा। तुम उसे यहाँ ले आओ। वह राजा को कष्ट-मुक्त कर सकेगा। आपको यहाँ आमंत्रित करने का मुख्य हेतु यही है।

राजा हंस के साथ अग्नि-कुण्ड से होता हुआ अम्बड़ लक्ष्मीपुर पहुंचा। अम्बड़ ने धरणेन्द्र चूड़ामणि

को कुष्ठ रोग से पीड़ित देखा। उसने उसके द्वारा भगवान् पार्श्वनाथ व धरणेन्द्र की पूजा कराई। दान-पुण्य आदि भी कराये। जल को अभिमन्त्रित कर पिलाया। राजा नीरोग हो गया। नगर में इस उपलक्ष्य में महोत्सव किया गया। पटरानी ने अम्बड़ का बहुत सत्कार किया। धरणेन्द्र चूड़ामणि ने अपनी पुत्री मदनमंजरी का विशेष आडम्बर से अम्बड़ के साथ विवाह किया। हस्तमोचन के अवसर पर हाथी, घोड़े आदि व प्रचुर धन दिया गया। अम्बड़ वहाँ कुछ दिन ठहरा और विद्याधरों से उसने कई विद्याएँ भी सीखीं।

मदनमंजरी को साथ लेकर अम्बड़ पुनः सोपारक नगर आया। उसने वहाँ भी कुछ चमत्कार दिखलाये। जनता बहुत प्रभावित हुई, किन्तु, जिस कार्य के लिये वह आया था, वह अब तक अधूरा ही था। राज-भवन में उसका प्रवेश नहीं हो सका था। अम्बड़ का मन उसी में संलग्न था।

व्यक्ति को जब सफलता मिलने को होती है, तब साधन-सामग्री भी उसी प्रकार जुट जाती है। वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। राजा और नागरिक वसन्त के सौन्दर्य से आप्लावित होने के लिए उद्यान में आए। राजकुमारी सुरसुन्दरी भी आई। अम्बड़ भी वहाँ आया।

अवसर देख कर उसने राजकुमारी पर मोहिनी विद्या का प्रयोग किया। अम्बड़ ने योगी का रूप बना लिया। वह सुरसुन्दरी के पास आया। उसे देखकर राजकुमारी मुग्ध हो गई। आशीर्वाद देकर योगी उसके आगे बैठ गया। राजकुमारी मुग्ध भाव से उसकी ओर एक टक देखने लगी। योगी ने बंग, कलिंग आदि देशों की रस-पूर्ण नाना बातें आरम्भ कीं। बात-चीत के दौरान राख को अभिमन्त्रित कर राजकुमारी को दिया। राजकुमारी ने वह राख अपने मस्तक पर लगा ली। योगी क्षण-एक वहाँ ठहरा और वहां से चल दिया।

राजकुमारी की सहेलियाँ इस पहेली को समझ न पाईं। उन्होंने राजा से सारी घटना सुनाई। राजा रोष में भर आया। उसने आक्रोष के साथ कहा—"वह कौन धूर्त है, जो मेरी कन्या को भी ठगता है। यदि मेरे सकोप नेत्र उस पर जा टिके तो वह कौनसे पाताल में अपना मुंह छुपायेगा।" राजा ने सुभटों की ओर देखा। सुभटों ने तत्काल ही अपने आयुध सम्भाल कर योगी का पीछा किया। अम्बड़ ने सुभटों पर भी मोहिनी विद्या का प्रयोग किया। वे भी सभी नतमस्तक होकर योगी के पास आकर बैठ गये। राजा ने अपना सेनापति भेजा। अम्बड़ ने उसे दो हाथ दिखलाये।



राजकुमारी योगी को देखते ही मुग्ध हो उठी

अपना भंयकर रूप बनाकर सेनापति का सामना किया। सेनापति टिक न सका। वह भाग खड़ा हुआ। राजा को सारा व्यतिकर सुनाया गया। सेना के साथ राजा स्वयं चढ़ आया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध छिड़ गया। राजा और अम्बड़ ने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु, विद्या के प्रभाव से अम्बड़ के एक भी बाण नहीं लगा! राजा ने सोचा, निश्चित ही यह कोई सिद्ध पुरुष है। मुझे क्या करना चाहिए?

केवल चिन्ता करने वाला व्यक्ति धोखा खा जाता है। अम्बड़ ने स्तम्भन विद्या का प्रयोग किया। राजा आदि का स्पन्दन भी अवरुद्ध हो गया। अम्बड़ ने अवसर का लाभ उठाया। राजा के मुकुट से बड़ी चातुरी और शीघ्रता से उसने वस्त्र उठा लिया। योगिनी द्वारा दिया गया आदेश पूर्ण हो गया। किन्तु, राजा आदि सभी व्यक्ति स्तम्भित ही थे। राजकुमारी सुरसुन्दरी ने आ-कर उन्हें मुक्त करने की प्रार्थना की। अम्बड़ ने उन्हें मुक्त कर दिया। राजा ने सुरसुन्दरी का विवाह अम्बड़ के साथ किया। अम्बड़ अपने परिवार के साथ रथ-नूपुर आया। गोरखयोगिनी से उसने भेंट की। मुकुट का वस्त्र उसके समक्ष प्रस्तुत किया। अम्बड़ ने निवेदन किया—"माताजी! मैंने आपके अनुग्रह से सातों ही

आदेश पूर्ण कर दिये हैं।" योगिनी ने भी स्मित हास्य के साथ कहा—"तो तू भी सोच, तेरा अभाव भरा या नहीं ?" अम्बड़ का मस्तक श्रद्धा से योगिनी के चरणों में झुक गया। उसने तृप्ति का अनुभव किया। योगिनी ने उसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। अम्बड़ अपने घर लौट आया।

*   *   *

अन्तिम जीवन

निर्धनता मनुष्य की प्रगति में इतनी बड़ी बाधा नहीं है, जितनी बाधा पौरुष व सूझबूझ का अभाव होती है। केवल सम्पन्नता में भी वह प्रगति सम्भव नहीं है, जो एक साहसी व्यक्ति कर सकता है। सुयोग्य व्यक्ति का मार्ग-दर्शन भी सफलता की दूरी को पाटता है। अम्बड़ निर्धन था। उस पर अपने अभिभावकों की भी छाया नहीं थी। किसी पारिवारिक व आत्मीय का भी सहयोग नहीं था, फिर भी उसने जीवन में वह प्रगति की, जिसकी कल्पना भी अशक्य जैसी लगती है। उसमें निमित्त बना था, उसका अपना भाग्य, पौरुष, सूझबूझ व उनमें भी विशेष गोरखयोगिनी का महत्व-पूर्ण मार्ग-दर्शन। जिस अम्बड़ के पास कुछ भी नहीं था, उसने भारतवर्ष का बड़ा राज्य प्राप्त किया। अपार धन-वैभव का वह स्वामी बना, बत्तीस स्त्रियों के साथ उसका विवाह हुआ। अलौकिक विद्याओं की उसे उपलब्धि हुई। वीर अम्बड़ के नाम से उसकी

ख्याति हुई।

कुरुबक ने अपनी बात को अब दूसरा मोड़ दिया। उसने कहा, जिस वीर पुरुष की गाथा आपको मैंने सुनाई, वे और कोई नहीं स्वनाम धन्य मेरे पिता अम्बड़ ही थे। उपकारी के प्रति कृतज्ञता के भाव उनमें विशेष रूप से थे; अतः प्रतिदिन तीनों समय वे योगिनी के चरणों में उपस्थित होते थे। योगिनी ने प्रसन्न होकर उनका दूसरा नाम विद्यासिद्ध भी रखा। मेरी माता का नाम चन्द्रावती है।

योगिनी की मेरे पिताजी पर विशेष कृपा थी। वह समय-समय पर नाना सूचनाएं व अद्भुत वस्तुएं उन्हें प्रदान करती रहती थीं। जब मैं आठ वर्ष का हुआ, उस समय की भी एक घटना है। मेरे पिताजी एक बार योगिनी के पास गये। उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी ध्यान-कुण्डलिका के नीचे गड़ा हुआ राजा हरिश्चन्द्र का धन-भण्डार उन्हें दिखाया। अग्निवेताल उसका संरक्षक था। वह वेताल योगिनी के सान्निध्य से उन पर प्रसन्न हुआ। उसने वह पूरा भण्डार पिताजी को दे दिया। पिताजी ने भी अग्निवेताल का सम्मान किया। धरणेन्द्र चूड़ामणि द्वारा दिया गया रत्नमय सिंहासन उन्होंने अग्निवेताल को अर्पित किया। वह



योगिनी पिताजी क समय-समय पर नाना सूचनाएं व
अद्भुत वस्तुएं प्रदान करती रहती थी।

पुरुष भी उसी भण्डार में रख दिया गया। भाण्डागार मुद्रित हो गया। राजन्! यह सब मैंने अपने पिताजी के मुख से सुना है। इसमें कुछ भी अन्यथा व कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है।

योग और वियोग का द्वन्द्व चला और चल रहा है। जिस गोरखयोगिनी के पुण्य-प्रभाव से पिताजी को सफलता प्राप्त हुई थी, वह स्वर्ग सिधार गई। योगिनी के वियोग से पिताजी अत्यन्त दुःखित हुए। उनका मन उचट गया था। एक दिन वे अपनी बत्तीस रानियों के साथ उद्यान में यात्रा के लिए गये। पुण्य-योग से वहाँ उनका केशी गणधर से साक्षात्कार हुआ। पिताजी ने घोड़े से उतर कर उन्हें नमस्कार किया। केशी गणधर ने धर्मोपदेश दिया। पिताजी ने प्रश्न किया—"भगवन्! जैन धर्म उपकारक व शुभ है, पर, क्या वह शिव धर्म के तुल्य है?"

केशी गणधर ने उत्तर दिया—"अधूरा ज्ञान किसी विषय का निर्णायक नहीं होता। कुएं का मेंढ़क समुद्र की असीमता को कैसे जान सकता है? राजन्! तू ने केवल शिव धर्म का ही अनुशीलन किया है। जैन-शासन के बारे में उतना परिचित नहीं है। जब उसे जानेगा, तेरा प्रश्न स्वयं समाहित हो जायेगा।"

अम्बड़ का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। उसने जैन-शासन के बारे में विस्तार से जानना चाहा। साथ ही प्रार्थना की, कितना सुन्दर हो, यह स्वर्णिम अवसर मुझे अपने आवास पर ही मिले। केशी गणधर ने वह प्रार्थना स्वीकार की। वे हमारे आवास पर पधारे। पिताजी ने विशेष भक्ति प्रदर्शित की। गणधर के मुख से प्रतिदिन धर्म-देशना सुनकर वे प्रबुद्ध हुए और सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया। क्रमशः श्रावक के बारह व्रत धारण किये। श्रावक-पर्याय का निरतिचार पालन करते हुए वे रह रहे थे।

केशी गणधर ने पिताजी को यह भी बताया कि भगवान् श्री महावीर भी जनता को प्रतिबोध देते हुए विचर रहे हैं। पिताजी इस संवाद से पुलकित हो उठे। भगवान् के दर्शनों के लिए उनका मन अधीर हो उठा। भगवान् श्री महावीर का शुभागमन उन्हीं दिनों विशाला में हुआ था। वे वहां आये। भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने भी देशना दी। पिताजी की श्रद्धा और दृढ़ हुई। उन्होंने एक प्रश्न किया—"भन्ते ! मैं संसार से कब पार पाऊँगा?" भगवान् ने उत्तर दिया—"अम्बड़! भावी उत्सर्पिणी में तू देवतीर्थंकृत नामक बाईसवां

तीर्थंकर होगा।" अपना इतना सुन्दर भविष्य सुनकर किसे आह्लाद नहीं होता? उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की—"प्रभो! प्रतिदिन आप मेरी वन्दना स्वीकार करें। मैं चम्पा की ओर जा रहा हूँ। कोई निर्देश प्रदान करें।"

भक्त के दिल में भगवान् के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। वहां भगवान् का ही वास होता है। भगवान् भी अपने भक्तों को नहीं बिसराते। भगवान् महावीर ने कहा—"अम्बड़! चम्पा में तेरी साधर्मिका सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में विशेष निपुण है। उसे मैं धर्म आशीर्वाद देता हूँ। उसे धर्म-ध्यान की अभिवृद्धि करनी चाहिए।" अम्बड़ चकित हो गया। भगवान् श्री महावीर भी जिसकी धार्मिक प्रवृत्तियों की प्रशंसा करते हैं, सचमुच ही वह दिव्य व दृढ़ श्राविका होगी। मुझे भी उसकी परीक्षा करनी चाहिए।

अम्बड़ चम्पा आया। नगर में पूर्व-द्वार पर ठहरा। उसने ब्रह्मा का स्वरूप बनाया। नगर में यह बात विश्रुत हो गई, नागरिकों के भाग्योदय से ब्रह्मा ने दर्शन दिये हैं। हजारों नागरिक अहमहमिकया वहां आने लगे। किन्तु, सुलसा नहीं आई। दूसरे दिन अम्बड़

दक्षिण दिशा के द्वार पर पहुँचा। वहां उसने शिव का रूप बनाया। हजारों नागरिकों ने शिव के दर्शन किये। सुलसा वहां भी नहीं आई। तीसरे दिन पश्चिम दिशा के द्वार पर अम्बड़ ने विष्णु का रूप बनाया। नागरिकों ने अपना अहोभाग्य माना। विष्णु के दर्शनों से कोई भी वंचित नहीं रहा होगा। पर, सुलसा तो वहां भी नहीं पहुँची।

अम्बड़ की तीनों योजनाएँ विफल हो गईं। उसने निश्चय किया—सुलसा दृढ़ धार्मिका है। इसे अन्य रूपों से नहीं ठगा जा सकता। सम्भव है, तीर्थंकर का रूप देखकर वह चली आए। उत्तर दिशा के द्वार पर उसने इन्द्रजाल से समवसरण की विकुर्वणा की। अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त चतुर्मुख तीर्थंकर का रूप धारण कर वह देशना देने लगा। शहर में यह बात फैल गई, यहाँ पच्चीसवें तीर्थंकर प्रकट हुए हैं। सुलसा के पास भी यह संवाद पहुंचा। लोगों ने उससे कहा—"ब्रह्मा, शिव व विष्णु के दर्शनों से तो कृतार्थ न हो सकी, पर, पच्चीसवें तीर्थंकर के दर्शन तो करले।" सुनते ही सुलसा ने कहा—"यह सब ढोंग है। पच्चीसवें तीर्थंकर कभी नहीं हो सकते। जनता को ठगने के लिए यह कोई षड्यन्त्र रचा गया है। मैं तो वहाँ कभी नहीं जाऊंगी।"

अम्बड़ की चौथी योजना भी विफल हो गई ।

अम्बड़ मूलरूप में सुलसा के घर आया । अम्बड़ को अपना एक सार्धमिक मान कर सुलसा ने उसका स्वागत किया। अम्बड़ ने रहस्यों का उद्घाटन करते हुए कहा—"ये उपक्रम मैंने तेरी सम्यक्त्व-परीक्षा के लिए ही किये थे । तू विचलित नहीं हुई । धर्म में तेरी दृढ़ आस्था देखकर मैं प्रभावित हुआ हूँ । अम्बड़ ने भगवान् के वाक्य भी उसे सुनाये और कहा—"भगवान् के वाक्य सचमुच ही यथार्थ हैं ?"

अम्बड़ अपने घर लौट आया । बहुत वर्षों तक उसने श्रावक-धर्म का पालन किया । अपनी विद्याओं के बल से उसने जैन शासन की विशेष प्रभावना की । तीर्थंकर नाम-कर्म के अर्जन में विशेष रूप से योगभूत होने वाले बीस स्थानों की सम्यक् आराधना की । विरक्त-भाव में रहने लगा । कुछ समय बाद राज्य-भार मुझे सौंप दिया । अन्तिम समय में अनशन किया और समाधि-पूर्वक मृत्यु पाकर देवलोक में गये । पति के विरह से बत्तीस रानियों ने भी अनशन किया और व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुईं । पति के प्रति उनका विशेष अनु-राग था; अतः वे सभी भण्डार में रखे गये सिंहासन पर पुतलियों के रूप में रह रही हैं ।

कुरुबक ने अपनी आत्म-कथा आरम्भ की। पाप-कर्म के योग से मेरा सारा ही राज्य शत्रुओं ने हस्तगत कर लिया है। मैं निर्धन हो गया हूं। जीवन-यापन का मेरे पास कोई साधन नहीं रहा। मैंने धन-भण्डार को निकालने का निर्णय किया। मैं ध्यान-कुण्डलिका के समीप गया। ज्यों ही मैंने उसे खोलने का प्रयत्न किया, मेरी माता चन्द्रावती ने मुझे प्रत्यक्षतः दर्शन दिये। आ-श्चर्यान्वित होकर मैंने पूछा—"माताजी ! आप कहां से ?" माताजी ने उत्तर दिया—"हम सभी रानियां मर कर व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुई हैं। पुतलियां होकर तेरे पिता के दिव्य सिंहासन की सुरक्षा कर रही हैं। तू इसके लिए उपक्रम मत कर। तेरे भाग्य में लक्ष्मी नहीं है, अतएव मैं तुझे निवारित करती हूँ। तू अपने घर चला जा।"

माता अदृश्य हो गई। मैंने सोचा, यदि भाग्य मुझे साथ नहीं देता है, तो प्रयत्न करना भी व्यर्थ है। मैंने सोचा, किसी भाग्यशाली पुरुष को साथ लेकर यदि प्रयत्न किया जाये तो, सम्भवतः सफलता मिल सकती है। इस उद्देश्य से मैं आपके पास आया हूं। आपके भाग्य से सम्भवतः मेरा भी भाग्य चमक उठे।

धन-भण्डार का नाम सुनते ही राजा विक्रमसिंह के

मुंह में पानी भर आया। भण्डार को हस्तगत करने के लिए वह कुरुबक के साथ उस ध्यान-कुण्डलिका के पास आया। ज्यों ही कुण्डलिका को खोलने का उपक्रम आरम्भ किया, भीतर से एक ध्वनि आई—"राजन्! यह उपक्रम मत करो। तुम्हें यह भाण्डागार प्राप्त नहीं होगा। इस भाण्डागार का उपभोक्ता तो केवल उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य ही होगा।"

विक्रमसिंह उस ध्वनि से बहुत चमत्कृत हुआ। उसने अपना प्रयत्न रोक दिया। वह नगर लौट आया। राजा ने कुरुबक की आजीविका का प्रबन्ध कर दिया। कुछ समय बाद राजा विक्रमसिंह दिवंगत हो गया। कुरुबक भी काल-कवलित हो गया।

समय अपने परिवेश में सभी को समेटता चलता है और साथ ही नये-नये उन्मेष भी प्रस्तुत करता जाता है। बहुत सारे राजा उसमें सिमट गये। कुछ समय बाद राजा विक्रमादित्य उन्मेष में आया। वह महासाहसिक था। उसने अपने पराक्रम से अग्निवेताल को वश में किया? अग्निवेताल ने विक्रमादित्य को अम्बड़ का सिंहासन व स्वर्णपुरुष प्रदान किया। राजा हरिश्चन्द्र के भण्डार की भी सभी वस्तुएं उसने उसे प्रदान कीं। वेताल के सहयोग से विक्रमादित्य ने सारी पृथ्वी का

ऋण-मुक्त किया और अपना संवत्सर प्रवर्तित किया। उस सिंहासन पर बैठ कर उसने बहुत समय तक राज्य किया, धर्म की आराधना की और स्वर्ग को अलंकृत किया।

* * *